This book is not interesting. —

[illegible]

This is a Communist novel.
[illegible]

अग्नि-पंथ

[समाज की भूमि पर लिखा गया क्रान्तिकारी उपन्यास]

लेखक

श्रीकृष्णदास एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, शाहगंज, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] १९४४ [मूल्य २||)

प्रकाशक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम.
अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद।



मुद्रक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम.
नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग्स,
शाहगंज, इलाहाबाद।

प्रकाशकीय—

आपके सामने 'अग्नि पथ' मौजूद है। कैसी बन पड़ी है यह आप ही जानें। मेरा तो प्रयत्न यही रहा है कि मैं आप के हाथों में ऐसी चीज़ दूँ जो आपका मनोरंजन करते हुये भी आपके सामने उन समस्याओं को रखे जो कि आज आपकी आँखों में घूर-घूर कर देख रही हैं। आप इन समस्याओं का क्या हल निकालेंगे यह तो आपके दृष्टिकोण तथा रुचि पर निर्भर है। अगर 'अग्नि-पथ' उन समस्याओं का हल निकालने के लिये आपको प्रेरित कर सका तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

आज का समाज नाश और निर्माण की दो भट्टियों में तप रहा है। विकृतियाँ जल ही जायेंगी, उन्हें भस्म होने से कोई रोक नहीं सकता। समय आ गया है जब कि समाज इस अग्नि-परीक्षा से उतीर्ण होने के लिये सहर्ष तैय्यार हो जाय। तब क्या होगा ? समाज की सत्य, सुन्दर और कल्याणकारी शक्तियाँ उभरने का पूरा अवसर पावेंगी और समाज उत्क्रमण तथा विकास-पथ पर बढ़ता जायेगा।

'अग्नि-पथ' के लेखक स्वयं विद्रोही हैं। राजनीतिक विद्रोह तो सभी करते हैं लेकिन जिस विद्रोह की जड़ पूरे समाज की पृष्ठभूमि में हो वही विद्रोह जनता को मुक्ति-पथ पर अग्रसर कर सकता है। जीवन के कटु अनुभवों

और संघर्षों से हँस-खेल कर भिड़ने वाला हमारा यशस्वी कलाकार अपनी सुलझी समझ और पैनी दृष्टि के सहारे इन समस्याओं को उभारता और उनका हल निकालता चलता है। भाषा में तेज़ी और चुस्ती कलाकार श्रीकृष्णदास की अपनी चीज़ है। वह विद्रोही हैं—मनसा, वाचा, कर्मणा विद्रोही हैं। असंतोष की ज्वाला उनके कलेजे में धधकती रहती है। इसीलिये वे 'अग्नि-पथ' पर स्वयं चलते हैं और दूसरों को भी उसपर ले चलने का प्रयत्न करते हैं।

नवयुग के संदेश-वाहकों में कामरेड श्रीकृष्णदास एम० ए० का अपना स्थान है। हमें पूरी आशा है कि आप परम्परागत शैली और 'टेकनीक' से बिल्कुल भिन्न ढर्रे पर लिखे गये इस उपन्यास का स्वागत करेंगे।

'अग्नि-पथ' सेवा में उपस्थित है। प्रकाशक को इस पर संतोष है, आपको भी संतोष हुआ तो प्रकाशक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

होली
२००० वि०

गयाप्रसाद तिवारी

निवेदन

युवक भावुक होता है, मनचला होता है। सुन्दर वस्तु देखकर उसका दिल मचल जाता है। उसे अपना बनाने के लिये वह किसी भी बलिदान से नहीं चूकता। लेकिन उसका हृदय अपने प्रेम-पात्र पर अपना सब कुछ निछावर कर देने के बाद क्या रीता हो जाता है? शायद नहीं।

रूप-लावण्य, स्नेह-प्रेम, हास-विलास की दुनिया में मौज करने वाला युवक वेदना और पीड़ा का भी अनुभव करता है। वेदना और पीड़ा सहज स्वभाव के ही अंग है। आस-पास रहनेवाले प्राणियों की वेदना और पीड़ा का अनुभव भी उसे करना पड़ता है, क्योंकि वह समाज का अविभाज्य हिस्सा है। यह अनुभूति उसे कर्तव्य की ओर प्रेरित करती है। उसके कर्तव्य की जननी उसकी अनुभूति है।

अनुभूति हृदय की वस्तु है। मस्तिष्क उसका परिष्कार करता है, तब आगे का रास्ता साफ़ दिखाई देता है। हृदय और मस्तिष्क के संयोग से बढ़ते जाने की भावना में दृढ़ता आती है। दृढ़ता से त्याग और बलिदान स्वभाव के अंग बन जाते हैं। व्यक्ति ऊपर उठता है, समाज को ऊपर उठाता है और उसे प्रगति की ओर अग्रसर करता है।

समाज व्यक्ति को सहारा देता है, रोड़े भी अटकाता है। सहारा पाकर व्यक्ति आगे बढ़ता है। रोड़े सामने आते हैं तो उनको दूर करता है, क्योंकि उसमें दृढ़ता होती है। समाज और व्यक्ति दोनों का विकास एक के साथ दूसरे के संघर्ष और सहयोग पर निर्भर है। इतिहास का यही नियम है।

हमारा देश पराधीन और ग़रीब है। रूढ़ि-गत परम्परायें उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। भावुक-हृदय रुकना नहीं चाहता। वह झुँझला उठता है। दृढ़ता हो तो वह रूढ़ियों को तोड़ फेंके।

आज उसे सामाजिक ही नहीं राजनीतिक रूढ़ियों को भी तोड़ते हुये आगे बढ़ना है। इसी में हमारा कल्याण है।

'अग्नि-पथ' इस ओर संकेत कर सका तो मुझे संतोष होगा।

श्रीकृष्णदास

अग्नि-पथ

"आपको असन्तोष क्यों है ?—क्योंकि आज का सामाजिक संगठन एक सुव्यवस्थित ढोंग है। इस ढोंग को नष्ट करने वाला ही सच्चा विद्रोही है। उसकी विजय निश्चित है; क्योंकि उसे मानवता और प्रगति दोनों का अमर वरदान प्राप्त है।"

१

उपोद्घात

संध्या का सुहावना समय था। ठंढी-ठंढी हवा चल रही थी। पश्चिम दिशा में होली हो रही थी। रङ्गीन किरणें, महीन बादलों के अवतरण को हटाकर पृथ्वी की ओर मुस्कराती चली आ रही थीं। अंशुमाली को भी आज होली सूझी थी। प्रकृति सुन्दरी को रंग-विरंगे धारों से रंगे दे रहे थे। बेचारी कभी सिकुड़ जाती, कभी लज्जा से सर झुकाकर घूंघट डाल लेने का प्रयत्न करती, कभी असहाय हो कर आँखें बन्द कर लेती। दोनों को अच्छा लग रहा था। एक अपनी ज़्यादती से बाज़ न आता, दूसरी इस ज़्यादती का मज़ा ले रही थी। अंशुमाली ने अंत में विदा माँगी। प्रकृति ने कहा 'नमस्ते'। वह झेंप गई। अंशुमाली चलते बने। प्रकृति ने अपनी साड़ी सँभाली।

अँधेरा हो चला था, लेकिन मि० वर्मा के यहाँ दिन हो रहा था। बिजली की हज़ारों बत्तियां जगमगा रही थीं। नीली, पीली, हरी, बैगनी, लाल बत्तियों के कारण ख़ूब रोशनी हो रही थी। मकान, सामने का लान और चार दिवारी सभी जगह बिजली के कुमकुमे लटक रहे थे। मकान के सामने सड़क पर पानी का छिड़काव हुआ था। सदर फाटक

पर 'स्वागतम्' लिखा हुआ था। लान में एक बड़े सजे हुये शामियाने में सैकड़ों सुन्दर कुर्सियां करीने से सजाई हुई थीं। कुर्सियों के सामने फ़र्श था। बीच में कामदार ईरानी क़ालीनें बिछी हुई थीं। उस पर मसनद और तकिये पड़े हुये थे। तश्तरियों में पान, तम्बाकू, सिगरेट, दियासलाई आदि चीज़ें रखी हुई थीं। इत्र की महँक से सारी महफ़िल गमक रही थी।

नौकर चाकर इधर उधर दौड़ धूप कर रहे थे। कोई किसी की बात ही नहीं सुन रहा था। सभी अपने-अपने कामों में लगे हुये थे। किसी को भी दम मारने की फ़ुर्सत नहीं थी। मि० वर्मा तो ईद के चाँद हो रहे थे। उनके सैकड़ों मेहमान, रिश्तेदार, दोस्त उनको बधाई देने के लिये उतावले हो रहे थे। बेचारे क्या-क्या करें ? मेहमानों और दोस्तों का स्वागत, बाहर भीतर का इन्तज़ाम, नौकरों को डांट-फटकार, मन की खुशी, शरीर की थकावट—परेशान थे बेचारे !

काफ़ी इन्तज़ार और कोशिश के बाद मि० वर्मा आख़िर मिल ही गये। बधाई और मुबारकबाद की झड़ी लग गई। सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये तो जलसा शुरू हुआ।

मुन्नी बाई का रंग आज चोखा था। वह अपनी कला का परिचय देने के लिए उतावली हो रही थीं। आज तो उनका मौक़ा था। रूप-लावण्य, स्वर लहरी, भावभङ्गी, चुलबुलाहट और शोख़ी का मूल्य जी भर कर और कहाँ पातीं ? हुस्न और अदा के लिये इतना गरम बाज़ार ज़रा मुश्किल से मिलता है।

राजा इन्द्र की इस सभा के अध्यक्ष थे नवाब माशूक़ अली खां साहब। आप ने बड़ी रंगीन तबीयत पाई थी। क्यों न हो ? वंश-परम्परा और संस्कार का असर तो होता ही है। कौन सी वह महफ़िल है जिसे हमारे नवाब साहब रौनक़ अफ़रोज़ न करते हों ! लखनऊ में तो यह सभी जानते थे कि बग़ैर नवाब साहब के कोई महफ़िल जम ही नहीं सकती ! रेशमी रूमाल आपने रंगे हुये मोछों पर फेरते हुये आपने फ़र्माया, "क्यों न बाई

मुन्नी जान अब हमको मशकूर करें और हमारे बेताब दिलों को राहत बख़्शें ?"

लोगों ने कहा--"ज़रूर ज़रूर।"

मुन्नी बाई कुछ झेंप सी गई। आपने झुक कर सबको सलाम किया और फिर सारी महफ़िल के पिघले हुए दिलों को अपनी स्वर लहरी में थिरकाने लगीं।

ऐ दर्द तू ही उठ के ज़रा दे तसल्लियाँ,
कुछ तो क़रार आये दिले बेक़रार को !

संगीत मदिरा में मस्त दर्शक झूम रहे थे !

× × ×

भोजन का निमंत्रण पाते ही ब्राह्मणों की संख्या में बाढ़ सी आ जाती है। दिन भर में कम से कम ढाई सौ ब्रह्मणों ने तो अवश्य ही भोजन दक्षिणा के उपरान्त मि॰ वर्मा को आशीर्वाद दिया होगा। शाम को पूजा पाठ हुआ। बच्चे को शुभाशिर्वाद देकर पुरोहित जी भी बिदा हुये। अब बचा बाहर लाया गया। बच्चे को देखकर सभी प्रसन्न हो उठे। बहुतों ने मिट्टी ली। सभी मेहमानों ने जी खोलकर बच्चे का मान किया। नवाब साहब ने अपनी दोलरी बच्चे के गले में डाल दी।

मुन्नी बाई ने भी बच्चे को प्यार किया। आपने मुस्करा कर कहा—"बाबू जी, बचा क्या है चाँद का टुकड़ा है। कितना प्यारा है ? बड़ा होनहार है। देखते नहीं हैं इसकी बड़ी-बड़ी प्यारी-प्यारी आँखें !" बाई जी ने बच्चे को चूम लिया। बचा चौंक उठा, जैसे डर गया हो।

तालाब था, तालाब में जल था, जल में लहरियाँ थीं। भँवरे भी गुनगुनाया करते थे। सब कुछ था। केवल कमल नहीं था। आज कमल भी खिल गया। सौंदर्य, सुषमा और सुख का सागर लहराने लगा। सभी मस्त थे !

बधाई गाई गई—

"यशोदा-नन्द का बालक, बधाई है, बधाई है"

२

वे दोनों

खुशी-खुशी बीस बरस बीत गये। प्रेम जवान हो गया था। चेहरे पर अजब मस्ती थी। मुखमण्डल पर तेज चमक रहा था। गोरे चाँद से माथे पर काले घुँघराले बाल उसकी शोभा को दूना कर रहे थे। मछलियों की तरह स्वच्छ, निर्मल, चंचल आँखें मन को मोहे लेती थीं। गोरा, गठीला, छरहरा बदन, लम्बे-लम्बे हाथ पैर, चौड़ी छाती, ऊँचे कन्धे—प्रेम सुघड़ सौंदर्य की प्रतिमा था।

प्रेम बड़े घर का एकलौता बेटा था। स्वभाव से सीधा, अकपट और विनम्र था। बी० ए० फ़ाइनल में पढ़ता था लेकिन चाचा जी से आँखें मिला कर बात भी कभी नहीं कर सका। पढ़ने का उसे शौक था। मि० वर्मा की लाइब्रेरी में साहित्य, इतिहास, समाज शास्त्र, राज-नीति सम्बन्धी जितनी भी किताबें थीं, प्रेम उन्हें पढ़ चुका था। पढ़ना उसके स्वभाव में शामिल हो गया था। ऐसे बेटे को पाकर कौन पिता संतोष और गर्व न करता!

मि० वर्मा सोचा करते थे कि प्रेम जल्दी ही युनिवर्सिटी की पढ़ाई ख़त्म करके विलायत जायेगा। वहाँ से आकर बड़ा सरकारी अफ्सर बनेगा। लोग इज़्ज़त करेंगे। ख़ान्दान का नाम बढ़ेगा। प्रेम की ज़िन्दगी सुख और सम्मान से बीतेगी।

शाम को लान पर टहलते हुये मि० वर्मा यही बातें सोच रहे थे कि प्रेम दौड़ा आया। उसने कहा "पापा, सिनेमा चलोगे?"

"क्यों, आज कौन सा फ़िल्म है?"

"यही, Love's Lobour Lost."

"चलो, लेकिन यह कोई अच्छी तसवीर तो है नहीं। क्यों तुम्हें बहुत पसन्द है?"

"नहीं, यों ही चलना चाहता था। लुई भी आयेगी।"

"तो यों कहो कि दोनों की राय हो चुकी थी। सिर्फ़ मेरे परमिशन की ज़रूरत थी। जाओ, ज़रूर जाओ बेटा।"

"पापा आप भी क्या कहते हैं! आप न चलेंगे तो फ़िल्म में मज़ा नहीं आयेगा। पिक्चर के साथ-साथ आलोचना भी चलती रहे तो आनन्द आ जाता है।"

"नहीं प्रेम, तुम दोनों हो आओ। मुझे आज ज़रूरी बात के लिये लुई के पिता से मिलना है।"

"लेकिन, वह भी तो फ़िल्म चल रहे हैं।"

" मैं उन्हें रोक लूँगा। काम ज़रूरी है।"

"क्या ऐसा ज़रूरी काम कि टाला नहीं जा सकता?"

"नहीं, मैं उनसे वादा कर चुका हूँ कि शाम को ज़रूर मिलूँगा। अब समय हो रहा है। चलो, मैं तुम्हें वहाँ छोड़ दूँगा। तुम और लुई सिनेमा चले जाना, मैं उनके साथ पार्क जाऊँगा। बातें ज़रूरी हैं। आज ही कुछ न कुछ फ़ैसला कर लेना है।"

"फ़ैसला कैसा?"

"यही, लुई की शादी के बारे में। वह जो मि० जान यंग हैं न ? उनका लड़का एम० ए० पास कर चुका है। पिछले साल से ही शादी की बातचीत चल रही है। मि० लुई ने सलाह मशविरे के लिये बुलाया है। कल फ़ाइनल वर्ड उन्हें देना है।"

"लेकिन पापा, लुई तो कह रही थी कि वह अभी शादी नहीं करेगी।"

"क्यों ?"

"उसका कहना है कि शादी से बेकार पढ़ाई में रुकावट होगी।"

"पगली है। क्या शादी के बाद लड़कियाँ पढ़ती नहीं ?"

"पढ़तीं क्यों नहीं ? लेकिन ध्यान तो इधर-उधर हो ही जाता है। लुई फ़र्स्ट क्लास पाने वाली लड़की है। कहीं शादी के चक्कर में उसकी पोज़ीशन न ख़राब हो जाय ?"

"यह सब फ़ज़ूल की बातें हैं। मि० लुई अपने ट्रान्सफ़र से पहिले शादी कर डालना चाहते हैं। यंग उन्हें बहुत पसन्द है। लुई क्या यंग को जानती नहीं ?"

"जानती तो ज़रूर है। उसे यों कोई इनकार तो नहीं होगा। लेकिन बारबार पढ़ाई की बातें किया करती है। उसके मन में जैसे कोई उत्सुकता नहीं है।"

"लुई शीलवती लड़की है। वह अपनी उत्सुकता ज़ाहिर कैसे कर सकती है ?"

"सो तो ठीक है पापा, लेकिन······"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। तुम लोग अभी बच्चे हो। तुम्हें इन बातों का क्या पता है ? इतना अच्छा मैच है। इसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिये।"

प्रेम चुप हो गया। वह आगे बोल ही क्या सकता था ? पापा से इतनी देर तक बातें करता रहा, यही क्या कम है ? लेकिन लुई की

शादी के लिये पापा इतने उतावले क्यों हैं ? इन्हें क्यों इतनी जल्दी पड़ी है !

मि० लुई कमरे में बैठे चिरुट पी रहे थे। लुई ने भीतर आते ही कहा, "चलो पापा, टाइम हो गया–प्रेम भी वहाँ आता होगा।"

"हाँ, प्रेम की ज़िद पर मैंने वादा तो कर दिया था, लेकिन मि० वर्मा से मुझे इसी वख्त कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं। तुम चली जाओ. प्रेम वहाँ मिल जायेगा। साथ-साथ फ़िल्म देख लेना।"

"नहीं पापा, ज़रूर चलो। अकेले हम लोग फ़िल्म इन्ज्वाय नहीं कर सकेंगे।"

"लेकिन मि० वर्मा जो यहाँ आयेंगे ?"

"अच्छा तो उनके लिये इन्तज़ार कर लिया जाय। उन्हें भी साथ लिये चलेंगे।"

मि० वर्मा की मोटर भीतर आई और हार्न सुनते ही लुई बाहर दौड़ गई। उसने मि० वर्मा और प्रेम को साथ ही देखा तो और भी ख़ुश हो गई। कहा, "वेरीगुड, पापा, आप आ गये, यह बहुत अच्छा हुआ। प्रेम और मैंने पिक्चर जाने को तय किया था। अभी मैं पापा से कह रही थी कि आप को भी साथ ले चलूँ। पापा कहने लगे बहुत ज़रूरी काम है, आप से बातें करनी हैं। अब आप पापा को भी लेते चलिये।"

"लेकिन बेटी, हम दोनों को ज़रूरी काम है। ज़रा बातचीत करनी है। प्रेम तो है ही। दोनों साथ देख आओ पिक्चर।"

"पापा, आप मान जाइये। आप की क्रीटिसिज़्म से हम लोगों को बहुत फ़ायदा होता है। पिक्चर में बहुत मज़ा आयेगा।"

दोनों बातें करते हुये आगे बढ़े। ज़ीने पर मि० लुई ने मि० वर्मा का अभिवादन किया।

"गुड ईवनिंग मि० वर्मा।"

"गुड ईवनिंग मि० लुई। यह प्रेम और लुई दोनों आज पिक्चर में हम लोगों को साथ ले जाने के लिये बड़े उतावले हैं।"

"हाँ, अभी लुई मुझसे भी यही ज़िद कर कर रही थी। उसने आपसे भी कहा होगा।"

"लेकिन हम लोग इन बच्चों के साथ आज जा ही कैसे सकते हैं ! बेटी, तुम दोनों पिक्चर देख आओ।"

"पापा आप लोगों के पास ठीक पिक्चर के ही वक़्त कौन सा ऐसा काम आ पड़ा ! नहीं, आप लोग चलिये।"

"पगली तेरी शादी की बातचीत करनी है।"

लुई झेंप गई। अब आगे वह क्या कहती ! चुप चाप कार में जाकर बैठ गई। प्रेम समझ गया, लुई कुछ परेशान हो रही है। उसने पूछा, "लुई, क्या मामला है ?"

"मामला क्या है ? मैं पापा से बार-बार कह चुकी कि मेरी शादी अभी नहीं होगी। कहते हैं मि० यंग बहुत अच्छे आदमी हैं। जान पहिचान के हैं। शादी अच्छी होगी।"

"तो तुमने क्या सोचा ?"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। पापा को कैसे समझाऊँ कि मैं शादी नहीं करना चाहती। उनको मेरी पढ़ाई का भी ख़्याल नहीं है। तुम्हीं इन्हें समझाओ !"

"लुई, मैं क्या करूँ ? अभी घर पर पापा से इसी बात को डिसकस कर के आ रहा हूँ। लेकिन दोनों पापा जैसे तय कर चुके हैं। अब क्या किया जाय ?"

"मैं क्या बताऊँ ? मैं फ़्रैंकली पापा से 'ना' कह नहीं सकती, क्योंकि इससे उन्हें 'शाक' लगेगा। मर्ज़ी मेरी बिल्कुल नहीं है। प्रेम, मैं तो शादी के नाम से काँपती हूँ। शादी के बाद क्या होगा ? क्या मैं तब भी आज ही की तरह आज़ाद रहूँगी ? आज तो मैं तुम्हारे साथ रहती हूँ। तुमसे अलग होकर शायद मेरा जीना दूभर हो जाय। शादी के बाद

मुझे अपना ध्यान तुमसे हटा कर कहीं और लगाना होगा। हम तुम दोनों आज़ाद परिन्दों की तरह उस वक्त भी खुले आसमान में उड़ सकेंगे, इसमें मुझे शक है। प्रेम, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ ?"

"लुई, मैं ख़ुद परेशान हूँ। यह सोचकर कि तुम किसी दूसरे की हो जाओगी, मुझे डर लगता है हम लोगों की ज़िन्दगी जैसी बन गई है उसमें अलहदगी के ख़्याल के लिये गुंजायश नहीं। हमारी पढ़ाई भी अभी पूरी नहीं हुई। तुम हमारे क्लास की सबसे अच्छी स्टूडेन्ट हो। शादी के बाद शायद क्लास में तुम्हारी यह पोज़ीशन न रह जाये। मुझे इसकी बड़ी फ़िक्र है। शादी के बाद हमारे साथ घूमने-फिरने, बातें करने और रहने का मौक़ा तुमको नहीं मिलेगा। मुझे डर है कि उस वक्त मैं भी तुमसे उतना खुल कर न मिल सकूँगा। तब क्या होगा, लुई ? हमारा दिल कैसे मानेगा ? हम दोनों पराये और बेगाने होकर कैसे जियेंगे ?"

दोनों चुप थे। मन में आने वाली घटनाओं के चित्र आते और फिर चले जाते ! प्रेम सोच रहा था, अब क्या होगा ? लुई का भविष्य यंग के साथ और उसका भविष्य लुई के साथ ! लुई के प्रति उसके रागात्मक भाव अवश्य थे। वह लुई को प्यार करता था। पुरानी दोस्ती थी। साथ ही साथ दिन कटते जा रहे थे। लेकिन अपने सहज स्नेह में उसने कभी भी यह नहीं सोचा था कि उसे लुई से अलग होना पड़ेगा। आख़िर लुई की शादी तो आवश्यक ही है। उसकी अवस्था भी शादी के लिये उपयुक्त है। यंग में कोई ख़राबी नहीं है। फिर शादी क्यों न हो ? क्या इसलिये कि इस शादी से उसकी और लुई की मित्रता में व्यवधान आने की आशंका है ? लुई क्या जन्म भर उसकी ही रहे ! और इसके लिये लुई को जन्म भर अविवाहिता ही रहना पड़ेगा ! मैत्री और स्नेह के कारण लुई को जीवन भर यों ही तो नहीं रखा जा सकता। लुई को शादी करनी ही होगी। उसमें सहयोग देना एक मित्र के नाते उसका कर्तव्य है। भले ही इसमें उसे कलेजे पर पत्थर रखकर अपने हाथों अपने

भविष्य के जीवन को लुई-विहीन बनाना पड़े। लेकिन क्या वह लुई के बग़ैर ज़िन्दा भी रह सकेगा!

कर्तव्य और स्वार्थ का द्वन्द चल रहा था। इस द्वन्द से प्रेम का कलेजा मथा जा रहा था। हृदय का आन्दोलन प्रगट न होने पावे इसके लिये प्रेम ऊपर से शान्त और स्थिर होकर बैठा था—मोटर चली जारही थी......लुई विक्षिप्त हो रही थी। प्रेम चुप क्यों है! प्रेम बोलता क्यों नहीं! उसे कोई चोट पहुँची है। लेकिन मैंने तो उसे कुछ कहा नहीं। शायद वह मेरी शादी की बातों से परेशान हो रहा है। प्रेम मेरा है, मैं उसकी हूँ। शायद इसे वह जानता है। फिर चेहरे पर यह उदासी क्यों! इतनी गंभीर मुद्रा, इतनी कड़ी चुप्पी—प्रेम के लिये यह नई चीज़ें हैं। प्रेम की पीड़ा का कारण मैं हूँ। मेरी शादी की बात प्रेम को दुख पहुँचा रही है। अभी से जब यह हालत है तो आगे क्या होगा! पापा अगर न माने और शादी हो ही गई, तो! क्या प्रेम उस समय भी यों ही चुप बैठा रहेगा! उस समय भी वह घुट-घुट कर जान देता रहेगा! लेकिन अभी क्या! अभी तो इनकार भी किया जा सकता है। पापा ने कोई फ़ाइनल वर्ड तो दिया नहीं है। मैं पापा से साफ़ कह दूँगी मैं अभी शादी नहीं करना चाहती। पापा को इससे दुख होगा। शायद वे मुझसे बोलना भी छोड़ दें। पापा ने बातें काफ़ी आगे तक बढ़ा दी हैं। पीछे हटने में उन्हें बुरा मालूम होगा। वे मि० यंग को पसन्द भी बहुत करते हैं। लेकिन प्रेम का क्या होगा! ओह, प्रेम की यह चुप्पी मुझे मारे डाल रही है। आख़िर वह चाहता क्या है! यही न कि मैं अभी शादी न करूँ। तो मैं पापा को मना कर दूँगी।......लुई सोचती जा रही थी। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला!

मोटर चली जा रही थी........

सिनेमा घर के पास मोटर रुक गई। धीमे से शोफ़र ने कहा "बाबू जी उतरिये, सिनेमा घर आ गया।" दोनो जैसे सोते से जाग गये। प्रेम

ने लुई से उतरने के लिए संकेत करते हुये मोटर का दरवाज़ा खोल दिया। लुई अन्यमनस्का सी बैठी रही। उसने कहा, प्रेम, "चलो आज गोमती चलें। सिनेमा चलने की तबियत नहीं हो रही है। वहाँ, गोमती के किनारे ठंडी हवा में लहरों के पास बैठेंगे, अच्छा रहेगा।"

"क्यों, कुछ परेशानी है क्या! कैसी तबियत है लुई।"

"नहीं कोई ख़ास बात नहीं है, यों ही सोच रही थी गोमती के किनारे चाँदनी रात में मज़ा आयेगा। यहाँ के कोलाहल से मेरा जी ऊब रहा है। ज़रा शान्ति चाहती हूँ।"

प्रेम समझ गया, लुई परेशान है। 'आल राइट' कहकर वह मोटर में फिर बैठ गया। मोटर गोमती की ओर चल दी।

गोमती का किनारा शान्त और शीतल था। राहगीर भी एक ही दो दिखाई पड़ते थे। अँधेरा समाप्त हो रहा था। चाँदनी छिटकने वाली थी। आसमान के तारे गोमती के पानी में झिलमिला रहे थे। धीरे-धीरे चाँदनी बिखर गई। यहाँ से वहाँ तक सफ़ेद फ़र्श बिछ गया। बालू के कण हीरे जैसे चमकने लगे। कार धीरे-धीरे जा रही थी। शीतल हवा के हल्के झोंके लुई को छूकर चले जाते थे। वह सिहर उठती। प्रेम गंभीर और शाँत, यों ही बैठा था। चुप, एक दम चुप!

कार रुकी। घाट पर अमर शान्ति थी! लहरें उठतीं, कुछ शोर करतीं और चुपके से सो जातीं। दोनों उतरे और घाट पर जा बैठे। बर्फ़ सी सुफ़ेद चाँदनी और कलकल बहता हुआ निर्मल जल—उतना ही निर्मल जितना प्रेम का हृदय और लुई की श्रद्धा भावना!

चुप्पी टूटी और बात चीत शुरू हुई।

"प्रेम! तुम समझे, इस समय तुम्हें सिनेमा न ले जाकर यहाँ क्यों ले आई!"

"हाँ, जलक्रीड़ा करने, अपनी निखरी हुई सौंदर्य माधुरी का दर्शन देने, अपनी रूप-राशि और अल्हड़ जवानी की मादक-मदिरा में मुझे आनन्द-विभोर करने, अपने निर्मल हृदय में मेरी थिरकती हुई परछाईं

को देख उस पर हँसने, उसका मज़ा लेने और मुझे लज्जित करने... ..."

"जी हाँ ! तुम भी क्या आदमी हो प्रेम ! हमेशा बेतुकी बातें करते रहते हो ! इन्सान को कभी भी तो गंभीर होना चाहिए। मेरा दिल टूटा जा रहा है, मेरा भविष्य का सपना धूल में मिलने वाला है, मेरा सब कुछ लुटने वाला है और तुम्हें मज़ाक सूझा है। इतनी गहरी चुप्पी के बाद बोले भी तो कविता करने लगे। मैं तो तुम्हारी कविता-कला से ऊब गई।"

"लेकिन लुई, ऊबने की इसमें बात ही क्या है ! मेरा मन चञ्चल हो उठा ! प्रकृति का सौंदर्य हृदय को बेचैन कर ही देता है। फिर तुम ही बताओ कोई भी हृदय वाला व्यक्ति, इस आनन्द में विभोर हुये बिना कैसे रह सकता है ! यह सन्नाटा, यह चाँदनी, सरिता की ये लहरियाँ और साथ में तुम ! मेरा हृदय यदि तड़प उठा, मचल गया, मैं अगर बोल ही उठा, तो मैंने क्या क़सूर किया ! नाराज़ न हो रानी !"

"प्रेम, मैं नाराज़ नहीं हूँ, मैं तुम्हारी हूँ। तुम जो चाहो मुझे कह लो। लेकिन इस समय मेरा दिल बहुत परेशान है। मैं चाहती हूँ कि शादी वाली समस्या किसी प्रकार सुलझाई जाय। मैं शादी नहीं करना चाहती। मैं तुम्हें छोड़ नही सकती ! मैं बिना तुम्हारे जी नहीं सकती। शादी की चर्चा से मुझे डर लगता है। मि० यंग अच्छे आदमी हैं। पापा उन पर फ़िदा हैं। लेकिन पापा को मेरे दिल का हाल क्या मालूम ! वे क्या जानें कि मेरी शादी मेरे सारे सपनों को तोड़ देगी, मेरी बसी हुई दुनिया उजड़ जायेगी, मेरे कल्पनाओं के महल मिस्मार हो जायेंगे।"

"लुई, ठीक कहती हो। लेकिन शादी की समस्या को भावुकता के बल पर टाला नहीं जा सकता। तुम्हें ज़िन्दगी भर अविवाहिता ही तो नहीं रहना है। शादी तो तुम्हारी होगी ही, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों तुम्हारा व्याह रचाया ही जायेगा। पापा का इसमें कोई दोष नहीं। वे तो पिता का कर्तव्य कर रहे हैं।"

"पिता का कर्तव्य क्या यह नहीं है कि वह लड़की की इच्छाओं का भी ध्यान रखे ? मैं यह कब कहती हूँ कि मैं शादी नहीं करूँगी । लेकिन इस समय मैं शादी नहीं कर सकती । अपने बिखरे हुये हृदय को बटोरने में भी तो कुछ दिन लगेंगे ! मैं क्या जानती थी कि जिसके साथ अपने सरल जीवन को इतने दिनों बिताया उससे अलग होकर मुझे एक ऐसे व्यक्ति की सहगामिनी बनना पड़ेगा जो कि लाख अच्छा और भला मानुस होते हुये अभी मुझसे दूर है । माना कि मि॰ यंग अच्छे आदमी हैं, लेकिन अच्छे आदमी भी तो बहुत से इस दुनियाँ में हैं । विवाह के लिये किसी आदमी का अच्छा होना ही सब कुछ तो नहीं है । जिसके हाथों में मुझे हमेशा के लिये सौंपा जा रहा है, जो मेरे भविष्य के जीवन का साथी है, सहगामी है, सहयोगी है, उसके बारे में मुझे कुछ तो जानने का हक़ है ? मुमकिन है बहुत नेक और अच्छे होने पर भी मि॰ यंग की मेरी पटरी न बैठ सके । मि॰ यंग पढ़े-लिखे होनहार आदमी हैं । उनके सपने भी बड़े होंगे । शायद बड़ी सरकारी नौकरी और अच्छी पोज़ीशन की बात सोच रहे हों । लेकिन तुम जानते हो प्रेम, ऐसे आदमी के साथ मेरी निभ नहीं सकती । मैं शादी करना चाहती हूँ, लेकिन ऐसे आदमी के साथ जो मेरी तरह आदर्शवादी हो, जो रोटी कमाना और मौज से रहना ही अपनी ज़िन्दगी का शेवा न बना ले और......"

"और जिसको पाकर तुम मुझे भूल सको ।"

"हाँ, मैं तुम्हें भूलना चाहती हूँ । तुमसे अलग रहकर तुम्हारी याद में घुट-घुट कर मरने से क्या फ़ायदा ? इससे अच्छा तो यही है कि मैं शादी ही न करूँ और आजीवन तुम्हारे ही साथ रहूँ । अगर तुमसे अलग ही होना है तो फिर तुम्हारी याद ही करके क्या करूँगी ?"

"लुई, क्या तुम इतनी क्रूर हो जाओगी ? शादी के बाद मुझे याद ही न करोगी ?"

"चाहती तो यही हूँ। तुम भी पापा की तरह यही चाहते हो कि मैं मि० यंग की हो जाऊँ। मित्र के नाते शायद तुम्हारा यही कर्तव्य है भी। लेकिन क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि तुम्हारी लुई तुमसे अलग होकर कैसे जियेगी ! अभी थोड़ी देर पहिले तुम मेरी पढ़ाई और पोज़ीशन की बातें कर रहे थे। लेकिन अब उसे भी भूल बैठे। पापा शादी चाहते हैं। तुम भी चाहते हो मेरी शादी हो जाय। अच्छी बात है, जब सभी मेरी शादी कराना चाहते हैं, तो करावें। लेकिन मेरे दिल पर जो गुज़र रही है, उसका मैं क्या करूँ। वर्तमान से मोह, भविष्य से डर और घबराहट, मैं क्या करूँ ? प्रेम तुम्हीं बतलाओ। अपनी लुई की इस परेशानी को कुछ तो दूर करो।"

"तुम पागल तो नहीं हो गई हो ! पापा से साफ़ कह देंगे कि अभी शादी नहीं करनी है। पापा कोई बच्चे तो नहीं है। नाराज़ होंगे तो उन्हें मना लेंगे। पापा हमारे बहुत अच्छे हैं। लेकिन लुई, कहेंगे उनसे क्या ? मैं तो सोच रहा था, पापा के सामने बहाना करने के पहले हमें कुछ कारण ढूंढ़ लेना चाहिये। पढ़ाई और पोज़ीशन की बात तो पापा के सामने जमती नहीं। दूसरी बातों के बारे में उनसे कुछ कह नहीं सकते। पापा को अगर मालूम होगा कि तुम मेरे लिये शादी से इन्कार कर रही हो तो वे क्या समझेंगे ! क्या वे मुझे लम्पट, शोहदा और दुश्चरित्र नहीं समझेंगे ? उनकी आँखों में गिरकर मैं कहाँ रहूँगा ! मेरा क्या हाल होगा ? और मेरा छोड़ो। तुमको क्या समझेंगे ! यही न कि जिस प्रेम के साथ तुम्हें देख कर वे फूल नहीं समाते थे उसी नीच के मोह में फँस कर तुम अपनी ज़िन्दगी बर्बाद कर रही हो ! पापा की तुम एकलौती बेटी हो। पापा को इससे कितना दुख होगा !"

"ठीक कहते हो प्रेम ! पापा को दुख होगा। तुम नीच, लम्पट, दुश्चरित्र समझे जाओगे। इसलिये मेरी शादी कर दो। पाप के सुख और अपनी इज़्ज़त के लिये मेरा बलिदान कर दो।"

"नहीं मेरा मतलब तो यह नहीं था।"

"क्यों ! ख़त्म हो गया सारा स्नेह ? समाप्त हो गई सारी पालिटिक्स ! अभी उस दिन लाइब्रेरी में क्या बातें हुई थीं ? शादी उसी के साथ हो सकती है जो कि पालिटिक्स में हिस्सा लेता हो। तुमने कहा था या नहीं कि अगर पति नौकरी चाकरी करने वाला हो तो उसकी स्त्री राजनीति में भाग नहीं ले सकती। अगर ले भी तो उसकी ज़िन्दगी ख़ुशहाल नहीं होगी। शादी के बाद सुखमय जीवन तो तभी रह सकता है जबकि पति-पत्नी दोनों एक ही विचारों के और एक ही स्वभाव के हों। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मि० यंग कैसे सपने देख रहे हैं ? तुम कह सकते हो कि मेरी उनकी निभ सकती है ?"

"हाँ, यह सवाल मुश्किल है। मि० यंग और राजनीति दोनों में मेल तो नहीं हो सकता।"

"फिर क्यों मेरे पीछे पड़े हुये हो ? अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने राजनीति पढ़ी और उसमें थोड़ा बहुत हिस्सा भी लिया। तुम्हीं ने मुझे उसमें घसीटा। तुम्हीं ने मुझसे वचन लिया कि दोनों आजीवन साथ रह कर देश सेवा करेंगे। तुम्हीं ने तो कहा था मेरी शादी भी ऐसे ही व्यक्ति से होगी जो कि राजनीति में हिस्सा लेता हो। अब तुम्हीं इस मौक़े पर मुझे उसके उल्टा करने के लिये मजबूर कर रहे हो। अपने से अलग करके मि० यंग जैसे व्यक्ति की गोद में झोंक कर तुम आराम की साँस लेना चाहते हो। गोया मैं तुम्हारे लिये बोझ हो रही हूँ !"

"लुई, तुम बहुत नाराज़ हो गई। बाद में, ग़ुस्सा शान्त होने पर शायद तुम सोचो कि तुमने मुझे ज़रूरत से ज़्यादा फटकार दिया। मैं ज़रा दबी ज़बान से इसलिये बोल रहा था कि विवाह-शादी का मामला बहुत गंभीर होता है। पापा की बातों को मानने से इन्कार करने के पहिले हमें सोच लेना चाहिये कि इसका क्या नतीजा होगा। मैं नतीजे से घबराता नहीं। हाँ, पापा के अरमानों का ख़्याल ज़रूर होता है। पापा का दिल तोड़ने के पहिले हमें सोच लेना चाहिये कि जिस आदर्श के

लिये हम इतनी बड़ी कुर्बानी करने जा रहे हैं, उसमें अन्त तक डटे भी रहेंगे या नहीं। राजनीति में तुम हिस्सा लेती रही हो और मेरे कहने पर, इसमें शक नहीं। मैं भी राजनीति में पल रहा हूँ और जीवन भर उसी में रहने का इरादा भी है। लेकिन राजनीति खेल नहीं है। एक बार राजनीति में फँस जाने पर उससे छुटकारा मिलना मुश्किल हो जाता है। अपने विद्यार्थी-जीवन में हम उसकी प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे हैं।

"कालेज छोड़ने पर जब हम सचमुच जनता के बीच में जायेंगे, उस समय परिस्थिति और भी गंभीर हो जायेगी। उस समय का जीवन कितना कठोर होगा, इसका अन्दाज़ हम आसानी से लगा सकते हैं। इसलिये, उस समय के लिये हमें अभी से तैय्यारी कर लेनी है। मैं मानता हूँ कि तुम मज़बूत दिल की लड़की हो, तुम निश्चय कर लेने के बाद पीछे नहीं हटोगी, लकिन अभी तो वह ज़माना नहीं आया कि घर फूँक कर तमाशा देखा जाय। अगर शादी कर लेने के बाद भी तुम राजनीति में हिस्सा ले सको, तो तुम्हें शादी से भागना नहीं चाहिये।"

"लकिन इसकी क्या गारंटी कि मैं शादी के बाद राजनीति में हिस्सा ले सकूँगी और मि० यंग उसमें मेरा साथ देंगे?"

"हाँ, यह बात तो ज़रूर साफ़ हो जानी चाहिये।"

"क्या तुम मि० यंग को जानते नहीं? उनके रहन-सहन ठाट-बाट से तुम्हें क्या पता चलता है। पिछल हड़ताल के बारे में उनकी क्या राय थी? राजनीति में हिस्सा लने वालों को वे किस निगाह से देखते हैं? प्रेम, क्या तुम मि० यंग को बिल्कुल नहीं जानते? उस दिन की गर्मा-गर्मी के बाद भी आज तुम ऐसी बातें कर रहे हो?"

"जानता तो हूँ, लकिन वह तो क्षणिक आवेश था। आवेश में लोग जाने क्या-क्या बक जाते हैं।

"जी हाँ, आवेश था! जो आदमी 'विद्यार्थी संघ' को गैर ज़िम्मेदार और इम्तहान में फ़ल होने वाले लड़कों का अखाड़ा समझता हो, जो

राजनीति को मुफ़्तखोरों का पेशा समझता हो, उसकी कैफ़ियत तुम नहीं दोगे तो और कौन देगा ? क्षणिक आवेश में उन्होंने ज़रूर ये बातें कहीं । लेकिन उन्हें पता होना चाहिये था कि उसी 'विद्यार्थी संघ' में तुम भी काम करते हो। उस दिन आवेश के झोंक में उन्होंने क्या तुम्हें भी इम्तहान में फ़ेल होनेवाला, और मुफ़्तख़ोर नहीं कहा ! क्या मैं उन बातों को कभी भूल सकती हूँ ! मदद न देते न सही, लेकिन उन्हें इस तरह की उलूल-जलूल बातें कहने का क्या हक़ था ! बहरहाल जाने दो। मैं तो नहीं समझती कि मि० यंग के साथ मेरी निभ सकेगी।"

"तो क्या मैं यह समझूं कि तुमने उनके साथ शादी न करना ही तय कर लिया है ? अगर ऐसा है तो हमें पापा से साफ़-साफ़ कह देना चाहिये । फ़िज़ूल बेचारे परेशान क्यों हों ? जितना शाक उन्हें लगना हो एक बार ही लग जाय।"

"मैं तो यही समझती हूँ । ज़िन्दगी भर मैं पापा की लाड़ली बेटी थी । मैंने उन्हें कभी तकलीफ़ नहीं दी । उनके इशारों पर चलना मैंने अपना फ़र्ज़ बना लिया था । अब भी मैं वैसा ही करने के लिये तैयार हूँ । लेकिन शादी के मामले को छोड़ कर !"

"लुई, जानती हो इसका नतीजा क्या होगा ?"

"जो भी हो, मैं तुम्हें छोड़कर, मि० यंग को स्वीकार करने के लिये तैय्यार नहीं हूँ । मैं ऐसा पति चाहती हूँ जो कि राजनीति को शरीफ़ों का पेशा समझे, जो तुम्हारी इज़्ज़त कर सके, जो हमारे कामों और कुर्बानियों की अहमियत को समझ सके । ऐसे ही पति के साथ मेरी निभ सकती है । तभी मैं शादी के बाद भी तुम्हारे साथ रह सकती हूँ और अपने आदर्श के लिये तुम्हारे बताये रास्ते पर साथ-साथ चल सकती हूँ ।"

"अच्छी बात है । आओ चलें, अब देर हो रही है।"

वापस लौटते समय प्रेम बहुत गंभीर होकर बैठा रहा । रास्ते भर वह कुछ भी नहीं बोला । उसे ऐसा लगा रहा था कि कोई बहुत भयानक

परिस्थिति सामने आने वाली है। ऐसी परिस्थिति जिसके लिये वह अभी तैय्यार नहीं है। लुई के स्वभाव से वह परिचित था। उसे मालूम था कि लुई दृढ़-प्रतिज्ञ लड़की है। उसने आवेश में, क्षणिक उन्माद में ऐसा निश्चय नहीं किया। पापा के लाख समझाने पर भी उसके मन में मि० यंग के लिये वह जगह नहीं हो सकेगी जिससे कि वह शादी के लिये तैय्यार हो जाय। अब क्या होगा! आगे कैसे-कैसे दिन देखने पड़ेंगे! प्रेम इन्हीं विचारों में ग़ोते लगा रहा था। मोटर चली जा रही थी······

लुई भी शांत, स्तब्ध सी बैठी थी। उसने सोचा, "प्रेम में कितना संयम, कितनी गंभीरता है! वह तेज़ हुई और बिगड़ भी पड़ी। उसने प्रेम को जली-कटी भी सुना दी। लेकिन वह चुपचाप सब सहता गया। वह उसका राजनीतिक गुरु था। सहपाठी और अभिन्न मित्र भी। ऐसी सख़्त बातें क्यों कह दीं! देखो न उसकी गंभीरता! मेरी भलाई और पापा के सुख के लिये अपना सब कुछ चुपचाप लुटाने के लिये सहज ही तैय्यार हो गया।" इस छोटी सी उम्र में प्रेम इतना गंभीर, इतना समझदार है लुई को इसका पता नहीं था। लुई प्रेम को अपने इतना निकट पाकर अपने को धन्य समझ रही थी! "मेरा प्रेम कितना अच्छा है!" लुई सोच रही थी, मोटर चली जा रही थी······!

३

अनिश्चय

कुलियों की हड़ताल का आज पैंतीसवाँ दिन था। सौ से ज़्यादा कुली गिरफ्तार हो चुके थे। चारों तरफ़ निराशा ही निराशा थी। मिस्टर आलम कहने को तो पूरी सहानुभूति दिखला रहे थे लेकिन जब कुलियों की शर्तों की बात आती तो वे टालमटोल करने लगते। वे यह तो मानते थे कि सारी बदमाशी ठीकेदार की है लेकिन उसके खेलाफ़ कुछ भी करने के लिये तैय्यार नहीं थे। बारबार यही कहते कि कलक्टर साहब जो चाहें कर सकते हैं। जब वे मेरी राय पूछेंगे तो मैं उनसे कुलियों की हिमायत कर दूँगा। कुलियों की माँग सिर्फ़ यह थी कि उनसे अच्छा बर्ताव किया जाय, मुफ़्त में काम न लिया जाय और ठीकेदार उनसे तीन रुपये, चार आने के बजाय एक रुपया आठ आने माहवारी ले। महँगी के कारण एक तो मुसाफ़िर बहुत कम सामान कुलियों से उठवातें हैं। सामान उठाने पर पैसों में बहुत झंझट करते हैं। दिन भर में ले दे के कुल छ-सात आने की आमदनी होती है। ऐसी सूरत में सवा तीन रुपये महीने टैक्स के बहुत ज़्यादा हैं। इतनी कम आमदनी में क्या ख़ुद खाये, क्या

बच्चों और औरत को खिलाये। चीज़ों के भाव तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं। कुलियों की ये बातें सभी को ठीक जँचती थी। यहाँ तक कि उन्हें गिरफ़्तार करने वाले दरोग़ा जी भी चुपके से कह देते, "भाई, माँग तो इनकी बेजा नहीं है, ठीकेदार बड़ा पाजी है।"

इस हड़ताल से पब्लिक में भी काफ़ी तहलका था। बड़े-बड़े व्यापारियों के माल स्टेशन पर ही पड़े ख़राब हो रहे थे। इन्हें स्टेशन से बाहर लाये कौन ? कुलियों का एका इतना मज़बूत था कि बाहर से आये हुये मज़दूर भी टिक न पाते। एक दो रोज़ में उन्हें भागना पड़ता। आसनसोल, कानपूर आदि से कई बार कुलियों को बुलाया गया। लेकिन वहाँ के युनियन अपने कुलियों को आने नहीं देते थे। ठीकेदार ने कितनी लालच दी, लेकिन सब बेकार गई। मजबूर होकर उसने आस-पास के देहातों से आदमी बुलवाये। ये आदमी भी टिक न सके। काँग्रेस और किसान सभा के लोग जा-जा कर इन गाँवों में मना कर देते, "कोई भाई स्टेशन पर काम करने न जाय, ग़रीब-ग़रीब भाई हैं। कुलियों पर मुसीबत आई है। उनकी मदद करना हमारा काम है। जिस भाई से जितना हो सके आटे-दाल से उनकी मदद करे।"

काँग्रेस और किसान सभा के वालंटियर शहर के आस पास के गाँवों में यही प्रचार किया करते थे। आस-पास के स्टेशनों पर भी ये वालटियर जाते और काम पर जाने वाले लोगों को मना करते थे। नतीजा यह होता कि ठीकेदार को यहाँ से भी आदमी नहीं मिलते थे। ठीकेदार भी मन में डर रहा था कि "अगर व्यापारियों ने मुक़दमें चलाये और हर्जाने का दावा किया तब क्या होगा ? वह सुलह करने के लिये तैय्यार था। लंकनि कुलियों से अगर वह सुलह कर ले तो वे शेर हो जायेंगे। कुलियों पर उसका रोब नहीं रहेगा। हमेशा के लिये एक मुसीबत खड़ी हो जायेगी। ज़रा-ज़रा सी बात के लिये हड़ताल करते रहेंगे। नहीं, मैं समझौता नहीं कर सकता। इन कम्बख़्तों के सामने घुटने टेक दूं यह नहीं हो सकता। इसमें मेरी प्रेसस्टिज का

सवाल है। कुलियों के सामने घुटने टेकना मेरे लिये मुश्किल है। लेकिन मि० आलम तो कुलियों की ही हिमायत करते हैं। धीरे-धीरे अफ़सरान कुलियों के हामी होते जा रहे हैं। कुलियों ने रो-गा कर, इनके घरों पर जाकर इनका दिल पिघला दिया। हैं, बड़े बादमाश ये कुली।"

रजन बहुत परेशान था। बूढ़ा आदमी, बोझ उठता नहीं था। फिर भी पेट पालना ही था। बुढ़िया थी, वह था। दोनों का काम किसी तरह चल जाता था। दिन भर मेहनत मज़दूरी करने पर शाम तक दो मुट्ठी अन्न के लिए कमा ही लेता था। बुढ़िया कहती "कब तक इस तरह हम जियेंगे ! भगवान उठा भी नहीं ले जाते।" रजन चुप-चाप सुन लेता। उसकी आँखों में निराशा और अवसाद की तसवीर खिंच जाती। एक ज़माना था जब कि यह बुढ़िया जवान थी। रजन की उम्र रही होगी उस समय बीस-इक्कीस बरस की। गाँव से निकलता तो दरवाज़े के पास खाँस लेता। रुपन मुस्करा देती। कहती, "महतो, हुक्का तो पीते जाओ।" "नहीं, काम है, जल्दी जाना है, लेकिन अगर जिद ही करती हो, तो लाओ पी लूं दो गाल।" रजन खटोले पर बैठ कर हुक्का गुड़-गुड़ता और रुपन एकटक उसे निहारा करती। सोचती "कितना पट्ठा जवान है, जो लड़की इससे ब्याही जायेगी उसके भाग खुल जायेंगे।" उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मानों कहती थीं "क्या तुम मेरे न हो सकोगे साजन।" रजन हुक्का पीकर कहता, "अच्छा अब जाता हूँ रुपन, काम है, देरी हो रही है।" पहिले, हफ़्तों बाद रजन उस गाँव से निकलता था। धीरे-धीरे न जाने क्यों अब रोज़-रोज़ उधर से जाना पड़ता। जिस दिन मौक़ा न लगता, उसे किसी चीज़ की कमी महसूस होती थी। रजन स्वयं यह समझ नहीं पाता था कि रुपन से बगैर मिले उसे चैन क्यों नहीं पड़ती। ब्याह के दिन नज़दीक आये तो वक्त काटे नहीं कटता था। रुपन मिली तो जैसे उसकी ज़िन्दगी सफल हो गई। बड़े अरमान थे दिल में। ज़िन्दगी मौज से कट जायेगी। भगवान ने पेट पालने को काफ़ी दे दिया

है। एक हल की खेती, पाँच प्राणियों के खाने भर को पैदा हो ही जायेगा। लेकिन भाग्य में चैन तो बदा ही नहीं था। इनसान के सभी मंसूबे पूरे हो जाँय तो क्या बात है? साल भर में माता-पिता चल बसे। बूढ़ी बुआ भी नहीं रही। रज्जन अकेले रह गया। गिरस्ती में मन न लगता। सोचा शहर चल कर कोई धन्धा कर लें। दो प्राणियों के लिए कमा ही लेंगे। ज़िमीदार की मार-गाली से तो बच जायेंगे।

कुली गिरी करते रज्जन को बहुत दिन बीत गये। नशा पानी में जवानी कटी। ग़म ग़लत करने के लिए वह अक्सर पी लिया करता था। रम्मु ने उसके इस गुण को सीख लिया। बचपन से ही बाप को कुली-गिरी करते देखा था। दिन भर रज्जन काम करता, शाम को चार पैसे का चुक्कड़ चढ़ा लेता और अनाप-शनाप बकते हुये घर में आ धमकता। रम्मू ने देखा वह रूपन को गाली ज़रूर देता था। रुपन भी बिगड़ती, शोर मचाती, मुहल्ले वालों की दुहाई देती, और अन्त में रज्जन को खिला-पिला कर सो जाती। रम्मू इसी संस्कार में पला था। इसका असर उसके ऊपर पड़ना ज़रूरी था।

बड़ा हुआ तो रम्मू की शादी हुई और अपनी औरत को लेकर वह अलग कोठरी में रहने लगा। उसका भी पेशा कुलीगिरी था। अभी जवान था, मुसाफ़िर उसी से सामान उठवाते। खाने भर को मज़े में पैदा कर लेता था। हाँ, इस हड़ताल के ज़माने में उसकी भी हालत ख़राब हो चली थी। पास की पूँजी ख़त्म हो गयी थी, बनिये उधार देने में हिचकते थे। सोचते, "हड़ताल हो रही है, हाथ रोक कर उधार देना चाहिये, दाम की अदायगी मुश्किल से ही होगी।"

रज्जन की हालत अबतर थी। बुढ़िया का पेट भरना था और अपने लिये भी दो टुकड़ों का इन्तज़ाम करना था। महीने भर से ऊपर हो गये। हड़ताल चल ही रही थी। रज्जन ने कई बार सोचा कोई दूसरा धन्धा करले, लेकिन युनियन का हुक्म था यहीं रहो, अपनी बस्ती में, शाम को मीटिंग-जलूस में शामिल होना ज़रूरी है। रज्जन अगर दूसरी जगह

जाय तो वह अपनी सभा में कैसे शामिल होगा, जलूस में कैसे जायेगा ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसी बस्ती में उसने अपनी जवानी बिताई, अब आखिरी दिन में वह अपनी नामूसी नहीं करायेगा। फिर, सभी तो भूखों मर रहे हैं। युनियन की तरफ़ से जितना आटा दाल इकट्ठा होता है सब को बराबर बँटता है। जब ये जवान लड़के सड़कों पर घूम-घूम कर अनाज पैसे इकट्ठा करते हैं और किसी तरह हम लोगों को जिन्दा रखते हैं, तो हमारा यह धरम नहीं है कि युनियन और अपनी बस्ती वालों को धोखा दें। बुढ़िया भूख से परेशान हो कर कहती, "अखिर कब ख़तम होगी यह हड़ताल ! जब भूख के मारे हम लोग मर ही जायेंगे तो हड़ताल में जीत होने से क्या फ़ायदा ?" रज्जन समझाता, "थोड़े दिनों की तकलीफ़ और है। जैसे इतने दिन कटे, वैसे ही अगले कुछ दिन भी कट ही जायेंगे। अफ़्सर लोग अब युनियन की बात मानने लगे हैं। उस दिन दारोगा जी कह रहे थे, 'रज्जन चौधरी, घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी जीत जल्दी होगी। ठीकेदार घबड़ा रहा है। थोड़े दिन और डटे रहो।' कामरेड बाबू भी दिन रात लगे हुये हैं। उनके सभी साथी तो जेल चले गये, लेकिन वे डरते नहीं। दिन रात दौड़ धूप कर रहे हैं। उस दिन काँग्रेस वाले खुद आये थे। सब हाल देख गये। उन्होंने कहा है, 'हम पूरी मदद करेंगे।' बुढ़िया चुप हो जाती।

रम्मू दिनों दिन उतावला और चंचल होता जा रहा था। पहिले दिन तो जोश में आकर कह दिया, "जब तक यूनियन नहीं कहेगी हम काम पर नहीं जायेंगे। चाहें हमें भूखों मरना पड़े, हम क़दम पीछे नहीं हटायेंगे।" लेकिन अब उसके पाँव डगमगाने लगे थे। उस दिन कहीं से कुछ आने हाथ लग गये तो चुक्कड़ चढ़ा ली और बकता-झकता घर आया। सोना को देखते ही बिगड़ पड़ा, "क्या तू मुझे खायेगी ! मेरे पास क्या धरा है ! जा के कहती क्यों नहीं कामरेड बाबू से, ला के दें तुझे ठूँसने के लिये ! हरामज़ादी मर भी नहीं जाती। आज आवें कामरेड बाबू तो हम उन्हें बताते हैं। ख़ुद तो घर में खा-पी कर आते

हैं और यहाँ हमें सिच्छा देते हैं, 'डटे रहो, पीछे मत हटो, अब बाजी मार लेंगे'। बाजी क्या मार लेंगे ख़ाक? सौ से ऊपर आदमी कैद चले गये। महीने भर से ऊपर हो गया। अब क्या हम लोगों की जान लेंगे! क्या खड़ी देखती है, कल मुँही कहीं की! कहता हूँ, जाने दे, ठीकेदार से माफ़ी माँग लूँ, काम पर जाऊँ, पेट भर अन्न का इन्तजाम हो। कहती है 'ऐसा कैसे होगा, कामरेड बाबू को हम धोखा नहीं दे सकते।' धोखा नहीं दे सकती तो खा उन्हीं कामरेड बाबू को अभी आते होंगे।" सोना अवाक् रह गई। रम्मू ने अगर कामरेड बाबू के सामने भी यही बकना शुरू किया तब क्या होगा? वह क्या सोचेंगे? सोना ने समझाने के लिये कहा, "काहे को गुस्सा हो रहे हो इतने! कामरेड बाबू ने अपने लिये यह सब किया है? हमीं लोगों के फ़ायदे के लिये तो बेचारे गली-गली की खाक छान रहे हैं, देखते नहीं, आज कल की कड़ी धूप में दिन भर दौड़ा करते हैं!"

रम्मू का पारा और भी चढ़ गया। उसने आवेश में कहना शुरू किया, "तो चली जा उन्हीं प्रेम बाबू के घर में, वहीं रहना, वहीं खाना। यहाँ तेरा कोई काम नहीं है। यही कामरेड प्रेम हैं जिन्होंने हमें भूखों मार डाला, तबाह कर दिया और तू उन्हीं की हिमायत करती है!"

"हिमायत की क्या बात है? तुमने क्यों कहा हम पीछे नहीं हटेंगे, डटे रहेंगे। मर्द की बात एक या दो? अगर यही करना था तो पहिले कह दिया होता। उन बेचारों को इतना परेशान करने से क्या फ़ायदा हुआ?"

"परेशान वे हुये कि हम? दिन भर मेहनत करते थे, साँझ को खा-पी कर सो रहते, न किसी का लेना न किसी का देना। जब से ये प्रेम बाबू आये, लेक्चर दे-दे कर कुलियों की बस्ती में आग लगा दी। जोश में आकर लोगों ने हड़ताल कर दी, अब बचा लोगों को मालूम पड़ रहा है हड़ताल का नतीजा।"

"तुम भी तो उन्हीं जोशीले लोगों में थे। जो बहादुर थे, आन वाले थे, वे तो जेल चले गये। लेकिन तुम जैसे जबान के बहादुर बाहर रह गये। अब जबान की बहादुरी भी खत्म होगई। अपनी बातों को तो भूल गये, बस कामरेड बाबू को बुरा भला कहना याद रह गया।"

"बुरा भला की क्या बात है ? जो हमारी रोजी पर बट्टा लगायेगा, जो हमें भूखों मारेगा, उसे हम गाली नहीं देंगे तो क्या उसकी पूजा करेंगे ?"

"तुम्हें शर्म नहीं आती ? जवान आदमी हो, चार पैसा इधर-उधर से पैदा कर लेते हो। लेकिन बाबा को देखो, बूढ़े आदमी हैं, दूर दराज जा कर कमा भी नहीं सकते। फिर भी युनियन की बुराई नहीं करते। जो मिलता है खा लेते हैं और चुपके पड़ रहते हैं। सब के घर में तो चूहे दौड़ रहे हैं कोई और तो नहीं तुम्हारी तरह से गला फाड़-फाड़ कर बकता ? सारी भूख महामारी तुम्हीं को घेरे हुये है।"

"अच्छा तो फिर अब मत कहना, चौक जाकर बोझा ढोओ, चार पैसे ले आओ।"

"कहूँगी क्यों नहीं ? मुफ्त में दिन भर बैठे मक्खी मारोगे ? युनियन का भी तो काम नहीं करते। वहीं झंडा जलूस करते तो भी जी को ढाढ़स होता।"

"मैं युनियन-फ्युनियन में काम नहीं करूँगा। मैं चौक भी नहीं जाऊँगा। यहीं बैठा-बैठा प्रेम बाबू को सरापूँगा और तू बोलेगी तेरी भी खबर लूँगा। समझी ?

"मेरी क्या खबर लेगा ?कोई खराब बात कहती हूँ। दुनियाँ जहान के सामने मुँह देखाना है तो चुप रह और घर में जाकर सो जा। कहे देती हूँ !"

"कहे देती हूँ', हरामजादी, चली है डराने," कह कर रम्मू ने एक धौल सोना को जमा दिया। सोना चिल्ला पड़ी। आस-पास के बूढ़े और औरतें इकट्ठा होकर सोना को दूर हटाने लगीं। रम्मू को और भी गुस्सा

आ गया। उसने सोना को दो-चार हाथ और जमाये और फिर लगा ज़ोर-ज़ोर से युनियन और कामरेड प्रेम को गालियाँ देने।

रज्जन ने शोर-गुल सुना तो समझ गया रम्मू पी-खाकर आया होगा। बस्ती में इस वक्त, वही तो एक गुण्डा रह गया है। पैसों की गर्मी है। सोना को मारे डाल रहा है। कोई पहिला मौका थोड़े ही है। दौड़ा हुआ गया तो देखा भीड़ लगी है। लोग समझा रहे हैं। लेकिन रम्मू जैसे दीवाना हो गया है। किसी की सुनता ही नहीं। रह-रह सोना की ओर झपटता है। युनियन और कामरेड को एक साँस में गाली दे रहा है। बूढ़ा रज्जन थोड़ी देर तक चुप रहा लेकिन जब नहीं रहा गया तो बोल ही उठा, "रमुआ! क्या बिल्कुल पागल हो गया है? लाज नहीं लगती तुझे? जवान औरत को इस तरह से सरेआम पीट रहा है!"

"तुम भी आ गये बाबा? तुम्हारी ही कमी थी। अच्छा किया। अब तुम्हारे सामने इसको दो लात और लगा लूँ तब कलेजा ठंढा हो।"

रज्जन गुस्से में काँप रहा था। लपक कर सोना के पास पहुँच गया, "आ, मार हरामज़ादे! तेरी भी मर्दमी आज देखूँ?" कहते-कहते बूढ़े के आँखों के सामने अँधेरा छा गया। बुढ़ौती और भूख से जर्जर शरीर इस आवेश को सह न सका। बूढ़ा वहीं बैठ गया। रम्मू बक-बक करता हुआ दूसरी ओर चला गया। सोना ज़मीन पर एक कोने में पड़ी मुँह ढक कर सिसकती रही!

कामरेड प्रेम इस दृष्य को देख कर स्तम्भित रह गये। सारा क़िस्सा सुना तो बड़ा दुख हुआ। धीमे से बोले, "सोना रानी, उठो। आज रम्मू ने तुम्हारी यह दुर्दशा मेरी वजह से की है। तुम मुझे माफ़ करो।" सोना सिहर उठी। उसकी हिचकियाँ बँध गई। आस-पास के लोग भी भीगी पलकों से एक-टक कामरेड प्रेम को देखते रहे। कुछ देर तक चारो तरफ़ सन्नाटा रहा। भरे गले से रज्जन बोला, "नहीं काम-रेड बाबू। यह सब मेरा कसूर है। इसको मैंने लड़कपन में ही बिगाड़

डाला। जब कच्ची उम्र का था तभी यह मुझे गाली गुफ्ता करते देखा करता था। इसने तभी से यह सब सीख लिया। अगर मैंने रमुआ को ठीक से पाला-पोसा होता तो यह इतना नालायक न निकलता। आप बड़े आदमी हैं। हम ग़रीब मूरख हैं। हमें आप माफ़ करें।"

"नहीं, रज्जन दादा ? आदमी भूखा होने पर अपनी बुद्धि खो बैठता है। युनियन ने कहा था इस हड़ताल में कामियाबी जल्दी होगी। लेकिन ठीकेदार रुपये पानी की तरह बहा रहा है। युनियन तो भरसक कोशिश कर रही है, लेकिन तुम समझते हो कि हमारे हाथ में और क्या है। ठीकेदार के हाथ में सभी अफ़्सरान हैं। कुछ तो अब तुम लोगों का तरफ़ से बोलने लगे हैं लेकिन रुपये की चपत बहुत कारगर होती है। अभी दारोगा जी कह रहे थे 'कुलियों की माँग सही है।' परन्तु गिरफ़्तार करने में वे भी नहीं चूकते। थोड़ी सी इनकी भी पूजा हो जाय तो यह भी ठीकेदार की हामी भरने लगेंगे। लेकिन निराश होने की कोई बात नहीं है। अगर तुम लोग कुछ दिन और सब्र से काम लो तो बेड़ा पार हो जाय। हम उम्मीद करते हैं कि जल्दी ही समझौता हो जायगा। काँग्रेस की तरफ़ से भी काफ़ी दबाव पड़ रहा है। कल ही शहर काँग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पास करके यह माँग पेश की है कि फ़ौरन ही कुलियों की बातें मानी जाँय और समझौता किया जाय। शहर में भी काफ़ी खलभली है। दो-चार रोज़ तुम लोग और बर्दाश्त करो। संतोष का फल मीठा होता है। उठो सोना, जाकर हाथ-मुंह धोओ ! रम्मू कहाँ है ? मैं जाकर अभी समझाता हूँ।"

"जाने दो भैया" रज्जन ने खाँसते हुये कहा "वह बड़ा बदमाश है। आपको भी कुछ जद-बद कह देगा, तो हम लोगों को डूबने की जगह भी नहीं मिलेगी। आप हमारे मालिक हैं। हम लोग तो आप का पीछा पकड़े हुये हैं। जब तक आपका हुक्म नहीं मिलेगा हम लोग स्टेशन पर कदम नहीं रखेंगे।"

"ऐसा ही होगा कामरेड बाबू" कई आवाज़ें एक साथ आई। प्रेम को बड़ा संतोष हुआ। चलने लगे तो सोना से एक गिलास पानी माँगा। सोना ख़ाली पानी कैसे देती ? घर में गुड़ भी तो नहीं था। हिचकिचाती हुई पानी का लोटा सामने रख कर सोना एक ओर खम्भे की आड़ में खड़ी हो गई। प्रेम ने लोटा उठाया तो देखा सोना की आँखें फिर लाल हो रही हैं। इस समय उसकी आँखों से गुस्सा और प्रतिहिंसा की चिनगारियाँ नहीं निकल रही थीं। उसका दिल रो रहा था। वह कितनी अभागिन है ! जिस कामरेड प्रेम के लिए वह इतना पिटी, इतनी बेइज़्ज़त हुई, उसी के लिए उसके घर में गुड़ की दो डली भी नहीं है ! सोना की इच्छा हुई कि ज़ोर से चिल्ला उठे। लकिन अपने को वह रोक ले गई। परवशता के दो बूंद आँसू ढुलक पड़े।

प्रेम ने चलते समय घूम कर फिर देखा। सोना ज्यों की त्यों खड़ी है। दोनों आँखों से आसुओं की धारा बह रही है। प्रेम सहमा, फिर क़दम बढ़ाते हुये आगे निकल गया।

सोना ने सोचा, "ये बाबू भी कितने अच्छे हैं ! इतनी गाली सुनने पर भी इन्हें गुस्सा नहीं आया। कौन ये अपनी भलाई के लिए कुछ करते हैं ? हमारी दुर्दशा पर रहम खाकर, हमारी गरीबी को देखकर इनका दिल पिघल उठा और इन्होंने हमको सुख-आराम देने के लिये इतना कष्ट उठाया। इनके माँ-बाप भी कितने भले होंगे ? ऐसा लड़का किसी मामूली घराने में थोड़े ही हो सकता है। गर्मी और धूप बर्दाश्त करके सड़कों पर हमारे लिए मारे-मारे फिरते हैं। कितने अच्छे हैं हमारे ये कामरेड ! जवान हैं, इलमदार हैं, चाहें तो राजा की तरह रह सकते है ! लेकिन खद्दड़ का मोटा कुर्ता और फटा पैजामा यही इनका पहिनावा है। हम गरीब हैं। चाहते हैं साटन, सिलिक, तनजेब पहिनें, अच्छा खाना खाँय और आनन्द से रहें। भगवान ने इन्हें सब कुछ दिया है, फिर भी जैसे उन पर लात मार कर गरीबी भेसा बनाये हमारी गन्दी गलियों में घूमा करते हैं। हममें इनमें कितना फर्क है !

हमारा आदमी भी कितना पागल है ? वह क्यों नहीं समझता कि हमारे प्रेम बाबू हमारी भलाई ही के लिये, हमारे पेट ही के लिये यह सब कुछ कहते हैं ! मूरख है, उसे अपनी भलाई बुराई का गियान भी कैसे हो सकता है। मद पीकर झूमते हुये आता है और मेरे ऊपर किसी न किसी बहाने से बरस पड़ता है। लाख समझाया, लाख ऊँचा नीचा देखाया लेकिन अपने होश में रहे तब तो मेरी सुने। ऊँह हमारा क्या ! जैसा करेगा वैसा भरेगा। मैं तो औरत जात हूँ। भगवान् ने मेरे भाग्य में यही लिखा है। दिन भर चूल्हा फूंको, शाम को लात घूंसे खाओ और रो पीट कर सो रहो। भगवान प्रेम बाबू का भला करें।" सोना हृदय खोलकर कामरेड प्रेम को आशीर्वाद दे रही थी।

प्रेम घर पहुँचा तो उसे लुई का ख़त मिला। पहाड़ से आया था। सेवाय होटल का पता देखकर प्रेम समझ गया, लुई ने ही लिखा होगा। जब से लुई गई उसने एक भी पत्र नहीं लिखा था। प्रेम का कलेजा धड़कने लगा। लुई ने क्या लिखा होगा ? पत्र वह हाँथ में लिए ही कुछ देर तक खड़ा रह गया। आँखों के सामने घटनाओं की तसवीर खिंच गई। पापा ने उदास और खिन्न होकर कहा था, "बेटे प्रेम, तुम भी लुई का साथ देते हो ? तुम्हें इस बात का ख्याल नहीं है कि मेरी बात कटती है ! ख़ैर जब तुम लोगों ने तय ही कर लिया है तो मेरे कहने सुनने से क्या फ़ायदा ! जो मन में आवे करो। अब तुम लोगों से मैं इस शादी के बारे में कुछ नहीं कहूँगा।" प्रेम का बुरा हाल था। एक तरफ़ लुई के भविष्य का प्रश्न दूसरी ओर पापा के वचन का मूल्य ! पापा सौम्य प्रकृति के दृढ़-प्रतिज्ञ आदमी हैं। अपने निश्चय से हटना वे नहीं जानते।

उस दिन लुई जब पहाड़ जाने लगी तो कह गई थी, "प्रेम, चिन्ता न करना। मैं पापा को समझा लूंगी।" लुई पापा को क्या समझा लेगी ? मि० यंग भी वहीं हैं। पापा के लिए कितनी परेशानी की बात है ? उनका प्रोग्राम था कि इस गर्मी में दोनों की मित्रता अच्छी तरह करा दी

जाय, जिससे अगले क्रिस्मस में शादी हो जाय। अपने ट्रान्सफ़र के पहिले वे यह काम ख़त्म कर लेना चाहते थे। जब मि० यंग को लुई के निश्चय का पता चलेगा तो वे क्या सोचेंगे? यही न, कि मैंने लुई को उकसाया है। लुई क्या करेगी? जब मि० यंग पापा और लुई के सामने मुझे बुरा भला कहेंगे उस समय पापा क्या सोचेंगे? लुई का क्या हाल होगा? लुई इसे बर्दाश्त कर सकेगी! कभी नहीं! मैं जानता हूँ लुई मेरे पक्ष की बातें करेगी। बात आगे बढ़ेगी। शायद गर्मा-गर्मी भी हो जाय। तब क्या होगा!" प्रेम सोचता रहा।

महरा ने पुकारा, "बाबू खाना खालो ठंढा हो रहा है।" प्रेम चौंक गया। हाँथ में लिफ़ाफ़ा ज्यों का त्यों पड़ा था। "अभी आता हूँ, ठहरो" कह कर लिफ़ाफ़ा खोला। पत्र इस प्रकार था।

१७, सेवाय होटल
मसूरी
२४ जून १९४०

मेरे प्रेम

पत्र देर से लिख रही हूँ। क्षमा करना। बहुत पहिले ही लिखने का इरादा था। लेकिन यहाँ की परिथिति से मजबूर होकर अभी तक नहीं लिख सकी। लिखती भी क्या! पापा बहुत नाराज़ हैं। कई बार शादी की बात आयी। मैं पुराने तर्कों को सामने रखती रही। एक दिन पापा झल्ला उठे। मैं भी आवेश में आ गयी। मैंने साफ़ कह दिया, मैं मि० यंग से शादी नहीं कर सकती। मेरी उनकी निभ नहीं सकती। उनके बड़े हौसले हैं। सरकारी पदों और नाम की फ़िक्र में रहते हैं। मैंने अपना रास्ता चुन लिया है। मुझे बड़े घर में रह कर आराम की ज़िन्दगी बसर नहीं करनी है। मैं पालिटिक्स में हिस्सा लेती रही हूँ और आगे भी लूँगी! पापा अवाक् रह गये। उन्हें अभी तक यह मालूम नहीं था कि मैं सचमुच पालिटिक्स से अलग नहीं हो सकती। वे समझते थे बचपने का जोश है, वक्त पाकर ख़त्म हो जायेगा। लेकिन मेरी फ्रैंक बातें सुनकर वे दंग रह गये। वे ख़ुद ऊँचे पद पर हैं। मैं

उनकी एकलौती लड़की, सड़कों और गलियों की ख़ाक छानूँगी ! अच्छा होता कि हम उन्हें शुरू में ही ये बातें बता देते। शायद तब उन्हें इतना 'शाक' न लगता। लेकिन यह 'शाक' तो उन्हें देना ही था उस समय नहीं तो अब सही, तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुमसे वादा कर चुकी हूँ कि मैं पालिटिक्स को अपना पेशा बनाऊँगी। उस वादे को मैं पूरा करूँगी। मि० यंग को ये बातें मालूम हो गई हैं। वे बहुत नाराज़ हैं। सेवाय होटल' छोड़कर कहीं और चले गये हैं। उस दिन शाम को सड़क पर घूमते दिखाई पड़े थे। अभिवादन के बाद मुँह फेर कर आगे बढ़ गये। पापा ने भी मुझसे बोलना बन्द कर दिया है। बातों का जवाब—हूँ, हाँ में देते हैं। शायद मेरी शादी न होने से उन्हें उतना 'शाक' नहीं लगा जितना यह जानकर कि मैं पालिटिक्स में हिस्सा लेती थी और आगे भी लूंगी। पापा मेरे भविष्य के बारे में बहुत चिन्तित हैं। बहरहाल तुम अपनी कहो। दिन कैसे बीतते हैं ! तुम्हें तो मेरी याद भी न आती होगी ! कुलियों के झगड़े का क्या हुआ ? जल्दी मामला तय हो जाय तो कुछ दिनों के लिये चले आओ। तुम्हारे साथ रहने से मन बदल जायेगा। पाप को तुम समझा लोगे तो अच्छा ही रहेगा। अच्छा बस !

उत्तर लौटती डाक से देना।

सस्नेह तुम्हारी
लुई

प्रेम ने पत्र कई बार पढ़ा। पैर के नीचे की ज़मीन खिसक गई। "पापा से अभी सारी बातें क्यों कह दी ! उनको कितना दुख हुआ होगा ! लेकिन वह बेचारी भी क्या करती ! पढ़ाई का बहाना भी कोई बहाना है ! मि० यंग सोचते होंगे यह सब मेरा ही किया हुआ है। ठीक तो सोचते हैं। मुझे इसकी पर्वाह नहीं। अगर लुई शादी नहीं करना चाहती तो उसका गला ज़बरदस्ती मि० यंग के साथ बाँधा थोड़े ही जा सकता है। लुई ने मुझे बुलाया है। क्या इस हालत में

वहाँ जाना ठीक होगा ? नहीं, मैं उसके पास इस समय नहीं जा सकता। कुलियों का मामला तय भी हो जाय तो भी बाक़ी काम देखना होगा। कितने झगड़े हैं। प्रेसों का मामला तूल खींचता जा रहा है। किसी भी दिन वहाँ के मज़दूर काम छोड़ कर बैठ सकते हैं। इस समय मुझे पहाड़ जाने की इजाज़त नहीं मिल सकती। इजाज़त माँगना ठीक भी नहीं है। मेरे जाने से काम बहुत सफ़र करेगा। तो मैं लुई को ख़त लिख दूं। मैं नहीं आ सकता। परिस्थिति पर काबू पाने की कोशिश करो। पापा को ख़ुश रखना तुम्हारा काम है........"

महरा ने फिर पुकारा तो प्रेम खाना खाने चल दियां।

शाम को ५.३० बजे शुक्ला जी से मिलना था। लू चल रही थी। प्रेम ने सोचा अभी रुक जाँय तो कैसा हो ? शुक्ला जी को फ़ोन किया। मालूम हुआ ६.३० बजे उन्हें दूसरी जगह जाना है, फिर रात को लौटेंगे। प्रेम को अब ज़रूर जाना पड़ेगा। वह साइकिल लेकर निकल पड़ा।

शुक्ला जी ईमानदार, त्यागी और कर्मठ देशभक्त थे। घर में लक्ष्मी की कृपा थी। किसी चीज़ की कमी नहीं थी। अपने प्राइवेट चैम्बर में बैठे कुछ लिख रहे थे। बैरा ने ख़बर दी, "एक बाबू आये हैं। बाल बिखरे हैं। पैजामा फटा है। कहते हैं आपसे मिलेंगे।" शुक्ला जी समझ गए कामरेड प्रेम ही होंगे। अभी उन्होंने ही तो फ़ोन किया था। कहा, "बुला लाओ।"

बाहर की चिलचिलाती धूप और तेज़ लू के कारण प्रेम का सारा बदन झुलसा जा रहा था। ठंढी हवा लगी तो कुछ आराम मिला। चैम्बर में पहुँच कर शुक्ला जी को नमस्कार किया।

"नमस्कार शुक्ला जी"

"नमस्कार कामरेड, कहो क्या हाल है ? बहुत दिनों पर इधर आये ! छुट्टियों में पहाड़ नहीं गये !"

"नहीं शुक्ला जी, अब पहाड़-वहाड़ जाने की फ़ुर्सत कहाँ है ! आप देखते ही हैं, सभी साथी गिरफ़्तार हो चुके। थोड़े से बचे हैं, किसी तरह

काम चलाना है ऐसे वक्त पार्टी से इजाज़त माँगना, वह भी पहाड़ जाने के लिये अच्छा नहीं लगता। जब काम का बोझ रहता है, तब आराम की नहीं सूझती।"

"इसीलिये बाल बिखरे हैं और कपड़ों का यह हाल है! भई, शरीर का तो ध्यान रखना ही चाहिये। ऐसे कैसे काम चलेगा?"

"सो तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन करूँ क्या! युनियन के झगड़ों से अजब परेशानी है। क्या होगा कुछ समझ में नहीं आता। कुली बेचारे आख़िर कब तक यों ही बिना किसी काम धन्धे के रहेंगे! शुक्ला जी, अब आप मदद कीजिये तो काम हो जाय। मि० आलम कभी इधर की बात करते हैं कभी उधर की। उनके रुख़ का ठीक पता ही नहीं चलता। मैजिस्ट्रेट कहता है जब तक स्थिति काबू में है मैं मि० आलम के कामों में हाथ नहीं डालूँगा। बड़ी मुश्किल है। कुलियों की हालत तो अबतर है। युनियन भीख माँग-माँग कर खिलाये जा रही है। लेकिन यह काग़ज़ की नाव कब तक चलेगी? अब अगर आप ज़ोर लगा दें तो हमारी जीत हो जाय।"

"कामरेड प्रेम, आप ठीक कहते हैं। मैं तो शुरू से ही कह रहा हूँ कि यह हड़ताल नहीं होनी चाहिये थी। आपने काँग्रेस कमेटी की भी बात नहीं मानी। यों ही, झोंक में आकर हड़ताल कर दिया। आप जानते हैं, कुलियों के प्रति जनता के हृदय में कोई भी सहानुभूति नहीं है। ये लोग मुसाफ़िरों को कितना तंग करते हैं! बहरहाल, काँग्रेस कमेटी का प्रस्ताव तो अखबारों में निकल ही गया है। अब आप क्या चाहते हैं?"

"मैं चाहता हूँ कि आप लोग कुछ अमली कार्रवाई भी करें। मि० आलम तथा दूसरे अफ़सरों पर दबाव डालें। जनता में भी कुछ प्रचार होना चाहिये। युनियन की तरफ़ से तो रोज़ जलूस निकलते ही हैं। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है। मैं तो यही चाहूँगा कि काँग्रेस भी इस मसले को अपने हाथ में ले और हमारी हड़ताल को सफल बनावे। शुक्ला

त्री, पुरानी बातों को उठाने से क्या फ़ायदा ! युनियन ने बहुत मजबूरी के कारण, समझौते की हर कोशिश के बाद ही हड़ताल का एलान किया। इस बात को आप अच्छी तरह जानते हैं। तब उन बातों को दोहराने से क्या लाभ ? और मान भी लीजिये कि युनियन ने ग़लती की। तो क्या, इस समय जब कि कुली भूखों मर रहे हैं, पैंतीस-छत्तीस दिन की हड़ताल हो चुकी है, अब क़दम पीछे हटाना ठीक होगा ! इसका असर उनके ऊपर क्या पड़ेगा ! जेल में बन्द कुलियों के मन पर क्या गुज़रेगी ! मैं तो चाहता हूँ कि आप इस नज़रिये से इस मसले पर ग़ौर करें।"

"अच्छी बात है। बताइये मैं क्या करूँ ?"

"आप मंत्री की हैसियत से एलान कीजिये कि 'कुलियों की माँग सही है। अभी तक काँग्रेस के कार्यकर्ताओं ने केवल सहानुभूति दिखलाई है और थोड़ा बहुत इधर उधर मदद की है। लेकिन अब वह वक्त आ गया है कि काँग्रेस इस मामले में हस्तक्षेप करे और इस हड़ताल को तेज़ी के साथ चलावे। कुलियों की माँग उचित है। उनकी जीत होनी ही चाहिये।' अगर इस प्रकार का बयान आप निकाल दें तो इसका असर जनता और अधिकारी दोनों पर पड़ेगा। मुमकिन है कि समझौते की कोई सूरत निकल आवे।

"कामरेड, बयान निकालने के पहिले अगर मैं मि० आलम से मिलकर बात-चीत कर लूँ तो कैसा हो ! मैं सोचता हूँ कि वह मान जायेंगे।"

"यही कीजिये।"

"तो आइये अभी मि० आलम के पास चले चलें।"

"क्या मेरा वहाँ जाना ठीक होगा ?"

"क्यों नहीं ठीक होगा ?"

"तो चलिये चला जाय।"

मि० आलम का बँगला पास ही था। कार दो मिनट में पहुँच गई। शुक्ला जी को देखते ही मि० आलम ने कहा, "आइये पंडित जी, इनके साथ आप कैसे चले ?"

"आलम साहब ! कुलियों की हालत ख़राब होती जा रही है। सौ से ऊपर कुली जेल जा चुके हैं। बड़ी परेशानी है। मैं तो चाहता हूँ कि आप समझौते की कोई सूरत निकालें।"

"लेकिन, जनाब पंडित जी, ये कामरेड प्रेम किसी की सुनें भी तो! हड़ताल के पहिले इन्होंने आप से भी तो इजाज़त नहीं ली। मेरे पास जब आये तो गर्म-गर्म बातें करके चले गये। अब सुलह करने आये हैं। मैंने शुरू में ही कहा था कि यह हड़ताल कामियाब नहीं हो सकती।"

"मि० आलम, मैं आप के सामने रोने नहीं आया। मैं आप लोगों के रुख को ख़ूब समझता हूँ। शुल्का जी न कहते तो मैं आपका दरवाज़ा झाँकने कभी न आता, चाहे कुली तड़प-तड़प कर मर जाते।" प्रेम तिलमिला उठा। शुक्ला जी ने बीच-बचाव किया।

"ख़ैर जाने दीजिये, जो हुआ सो हुआ। कुली पीछे नहीं हटेंगे इसमें कोई शक नहीं। उनकी हिम्मत और क़ुर्बानी के हम भी क़ायल हैं। मि० आलम, मुझे आपसे यह कहना था कि इस हड़ताल के अब पैंतीस-छत्तीस दिन होने को आये; कुलियों की माँग सही है, यह भी आप जानते हैं। कांग्रेस कमेटी ने अभी तक इस मामले में हाथ नहीं डाला है। लेकिन अगर अब समझौते की कोई सूरत नहीं निकलती तो उसे मजबूर होकर इसमें हाथ डालना ही पड़ेगा। शहर के एक हिस्से में सैकड़ों प्राणी भूखों मरते रहें और शहर काँग्रेस कमेटी चुपचाप यह तमाशा देखती रहे ऐसा नहीं हो सकता। मैं आपसे यही चाहता हूँ कि कुलियों की माँगों को पूरा कराने में आप हमारी मदद करें।"

"पंडित जी, मैं तैयार हूँ" मि० आलम सहम कर बोले, "मैं चाहता हूँ कि कुली भी कुछ अपनी माँगों को कम करें, जिससे मैं ठीकेदार पर दबाव डाल सकूं।"

"कुली अपनी माँगों में क्या कमी करें? उनकी कौन सी माँग बेजा है?" प्रेम ने कहा।

"और सब तो ठीक है। यही, माहवारी महसूल में कुली कुछ और बढ़ा दें।"

शुक्ला जी ने कहा "कामरेड आप इस पर राज़ी हो जाइये।"

"अच्छी बात है। आप कुलियों का महसूल एक आना रोज़ करा दीजिये। मैं इस बात पर युनियन को राज़ी करने की कोशिश करूँगा।"

"और बाक़ी आपकी शर्तें मैं मंज़ूर करा लूंगा।"

"एक बात और। यूनियन रिकागनाइज़ कर ली जाय। कल ही हमारे सभी कुली छोड़ दिये जाँय। उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो। हड़ताल में हिस्सा लेने की वजह से उनके बिल्ले वगैरह का झगड़ा न पड़े। वही कुली ठीकेदार का बिल्ला पा सके जिसको युनियन कहे।"

मिस्टर आलम कुछ झिझके। कामरेड प्रेम ने सारी बातें एक साँस में कह दी थीं। युनियन को मज़दूरों की नुमाइन्दा माना जाय, इस पर हर परचे में ज़ोर दिया गया था। शुक्ला जी ने कहा, "मि० आलम, आपको इन बातों को मंज़ूर कर लेने में कोई एतराज़ तो नहीं होना चाहिए।"

"एतराज़ की बात नहीं। मैं सोच रहा था कि ठीकेदार और सभी बातें तो मान लेगा लेकिन युनियन के 'रिकागनिशन' वाली बात पर कहीं कुछ झन्झट न खड़ा हो जाय?"

"तब तो समझौता हो चुका।" प्रेम ने ज़ोर देकर कहा। "अगर युनियन ही न रही तो कुलियों की क़ुर्बानी का नतीजा ही क्या निकला? रुपया-आठ आना महसूल कम कराने ही के लिये तो कुलियों ने यह हड़ताल की नहीं थी।"

"कामरेड आप ठीक कहते हैं। यह तो पहली शर्त है। अगर समझौते में यह शर्त पूरी नहीं हुई तो बाक़ी चीज़ों के पूरे हो जाने से ही क्या हुआ! मि० आलम आप इस शर्त को मान लें।"

मि० आलम ने देखा, शुक्ला जी भी इस पर ज़ोर दे रहे हैं। अगर काँग्रेस ने भी इस हड़ताल में हाथ लगा दिया तो बड़ी मुश्किल होगी। बाद में समझौता तो हो ही जायेगा। क्यों न मैं ही इसका सेहरा अपने सर पर ले लूं? मेरी 'पापूलैरिटी' भी इससे बढ़ जायेगी। साहब तो कब के कह रहे हैं, "समझौता कराके किसी तरह हड़ताल ख़त्म कराओ।" कुछ रुक कर बोले, "अच्छी बात है। मैं पूरी कोशिश करूँगा। मैं अभी साहब के पास जाता हूँ। उनसे मिलकर फ़ैसला कर लूँगा। सवेरे आपको इसकी ख़बर मिल जायेगी।"

धन्यवाद देकर शुक्ला जी प्रेम के साथ बाहर निकले। बोले, "उम्मीद तो है। यह आदमी शायद काम कर दे।"

"हाँ" प्रेम ने कहा, "लेकिन अगर समझौता न हो सका तो फिर? उस समय आपका क्या रुख़ होगा?"

"इस पर कल बात करेंगे। देख लें मि० आलम क्या करते हैं।"

बंगले पर पहुँच कर शुक्ला जी ने प्रेम को छोड़ दिया। शुक्ला जी अपने काम से चले गये। प्रेम ने साइकिल उठाई और युनियन के दफ़्तर की ओर चल दिया।

४

प्रेम की प्यास

घर पहुँचा तो प्रेम के सर में चक्कर आ रहा था। उसे गहरी चोट लगी थी। मि० आलम की बातों से वह तिलमिला उठा था। जिस समय मि० आलम तानेज़नी कर रहे थे प्रेम गुस्से में भुना जा रहा था। इस गुस्से में प्रतिहिंसा नहीं थी, खीझ थी। कुलियों ने शुरू के दिनों में काफ़ी जोश दिखाया लेकिन ज्यों-ज्यों दिन गुज़रने लगे उनका जोश भी ठंढा होने लगा। सौ से ऊपर कुली जेल जा चुके थे। तीन बार लाठी चार्ज हो चुका था। कुली युनियन में काम करने वाले प्रेम के सभी साथी पकड़े जा चुके थे। प्रेम भी किसी दिन गिरफ़ार हो सकता था। कुलियों की परेशानी और घबड़ाहट से प्रेम चौकन्ना हो गया था। इसीलिये वह समझौता चाहता था। लेकिन समझौते के माने यह तो नहीं थे कि कुलियों की कोई बात ही न मानी जाय। सबसे बड़ी और अहम माँग थी युनियन के प्रतिनिति संस्था मान लिये जाने की। इस माँग को तो पूरा करना ही पड़ेगा। रही बात दूसरी मागों की। उसके लिए तो बहुत हद तक मि० आलम भी तैयार हैं। समझौते से कुलियों की पूरी जीत हो सकती है, लेकिन कांग्रेस वालों के सहयोग के बिना अधिकारी

जल्दी झुकेंगे नहीं। ये शुक्ला जी भी अजब आदमी हैं। बार-बार यही कहते हैं 'शुरू में मेरी बात नहीं मानी बस हड़ताल शुरू कर दी।' इनकी बात मानते तो फिर हड़ताल ही क्यों करते ! जब हड़ताल ही न होती तो इनकी सहायता की हमें क्या ज़रूरत होती ? ख़ैर शुक्ला जी को तो मैं घसीट ही लाऊँगा। आख़िर कांग्रेस वाले ही तो ठहरे, जायेंगे कहाँ ! कुलियों की आवाज़ महल्ले-महल्ले, गली-गली में पहुँच चुकी है। उसे अनसुनी करना आसान काम नहीं। शुक्ला जी उसे अनसुनी नहीं करेंगे।

मि० आलम का कोई यक़ीन नहीं। वे तो नाम चाहते हैं। अगर समझौता हो गया तो पबलिक में उनका रङ्ग जम जायेगा। सबसे कहते फिरेंगे, "जनाब, समझौते की कामयाबी के लिये मुझे शुक्रिया अदा कीजिये। मैंने जी-तोड़ कोशिश की तब कहीं जा के यह समझौता हो सका, वरना साहब तो कुलियों और युनियन से बहुत नाराज़ था।" अगर समझौता न हो सका तो कह देंगे, "मैं क्या करता भाई, मैंने तो भर सक कोशिश की, लेकिन साहब राज़ी नहीं होता। ठीकेदार ने उसके कान भर दिये हैं।" ठीकेदार से कहते, "बहुत अच्छा किया, इन कुलियों को मुंह लगाना अच्छा नहीं। एक बार इनके सामने झुक जाओ तो हमेशा के लिये हड़ताल और धमकियों की बला मोल लो।" ऐसे आदमी का क्या कहा जाय ! है तो इतना बड़ा अफ़्सर लेकिन दम नहीं है इस शख़्स में। सब के आगे सब की ऐसी कहने का आदी है। बहर हाल देखें कल क्या होता है ? समझौता हो गया तो क्या बात ? जीत ही जीत है। अगर न हो सका तो फिर हड़ताल तो चल ही रही है। और भी मेहनत करनी होगी। कुलियों को ढाढ़स बँधाना होगा और कांग्रेस वालों को घसीट कर इस काम में लाना होगा। उस समय सारे शहर की पूरी सहानुभूति इन कुलियों के साथ हो जायगी। तब मि० आलम, साहब और ठीकेदार का ठिकना

मुश्किल हो जायगा। हमारे कुलियों के एक वक़्त खाने का भी इन्तज़ाम हो जाय तो काम चल जाय। फिर ये पीछे नहीं हटेंगे।

खाने का इन्तज़ाम क्या हो ? सराफ़ा, चौक, मण्डी सभी जगह तो आटा-दाल माँग चुके। अब कहाँ माँगने जाँय ? काँग्रेस वाले सहानुभूति तो बहुत दिखलाते हैं, लेकिन जब पैसा अनाज जमा करने के लिये कहो तो मुकर जाते हैं। कहते हैं बेकार कौन टाइम ख़राब करे ! दोस्तों, साथियों को भी पूरी तरह टैक्स कर चुका। मेरे पास कुछ है नहीं। क्या करूँ !

बेचारी सोना ख़ाली पानी देते समय जैसे मरी जा रही थी। उसके घर में कुछ भी तो नहीं था, देती क्या ! रम्मू तो इधर-उधर कमा भी लेता है। लेकिन जो इधर-उधर हाथ नहीं मार सकते उनका क्या होता होगा ! बेचारे रञ्जन को देखो शान्त होकर सब तकलीफ़ें उठा रहा है लेकिन युनियन के नाम पर धब्बा लगने देना नहीं चाहता ! कितने जीवट का आदमी है यह बुड्ढा ! नज़ीर ने तो गोया क़सम खाली है कि जान रहते वह हड़ताल नहीं बन्द होने देगा। साठ बरस की उम्र और इतना जोश ! ताज्जुब होता है।

प्रेम ने सोचा समझौता कर लेना ठीक होगा। बस, युनियन को मान लेने वाली बात तय हो जाय तो समझौता कर लेना चाहिये। कल देखें मि० आलम क्या ख़बर देते हैं ? कोई बहुत ज़्यादा उम्मीद तो है नहीं।

प्रेम यही सब सोच रहा था कि महरा ने ख़बर दी, "बाबू जी, रमेश बाबू आये हैं, कहते हैं जल्दी काम है. अभी मिलेंगे।"

"बुला लो अन्दर" कहकर प्रेम फिर सोचने लगा, देखें रमेश क्या ख़बर लाया है। अजब आदमी है। इतनी बार मना किया लेकिन मानता ही नहीं, कहता है, जीवन का सारा सुख इसी में है। अफ़सोस इस बात का है कि रमेश इसे ठीक समझता है। शायद इस कीचड़ से रमेश न निकल सके। क्या किया जाय उसके लिये !

"प्रेम, नमस्ते, कहो इतने उदास क्यों हो ?" कह कर रमेश प्रेम के पास ही आ बैठा।

"कुछ नहीं दोस्त, बड़ी परेशानी है। हड़ताल में कुछ शिथिलता आ गई है, कहीं ऐसा न हो कि सारा खेल ही बिगड़ जाय ? अभी मि० आलम के पास शुक्ला जी के साथ गया था। कहा तो है समझौते के लिये कोशिश करूँगा, लेकिन देखें करता क्या है। उसकी बातों का मुझे यक़ीन नहीं। मेरे सामने कुछ कहा है लेकिन साहब और ठीकेदार के सामने कुछ और कहेगा।"

"तुमने भी यह क्या बला पाल ली अपने सर ? कितने बार तुम से कह चुका अपना समय बेकार ख़राब न करो लेकिन तुम मानते ही नहीं।"

"रमेश, इसे तुम समय ख़राब करना कहते हो। लेकिन तुम जो कुछ करते हो वह क्या है ? मैं ग़रीबों की मदद करता हूँ, उनके दुख-सुख में काम आता हूँ, तो तुम कहते हो समय ख़राब हो रहा है। और तुम अपना सारा समय, सारा धन रेखा के लिये नष्ट करते हो, इसे तुम ठीक समझते हो, क्यों ? रमेश तुम्हें अब अपना रास्ता बदल देना चाहिये। कब तक तुम अपनी चढ़ी जवानी, कोमल भावुकता और कर्तव्य भावना को उस वेश्या रेखा के चरणों पर बलिदान करते रहोगे ? मैं मानता हूँ कि रेखा दूसरी वेश्याओं की तरह धूर्त नहीं है, शायद वह तुमसे स्नेह भी करती है, लेकिन इन वेश्याओं का कोई ठिकाना नहीं। रमेश मेरी बात मानो, अब अपना रास्ता बदल दो।"

"प्रेम, तुम बच्चे हो, इन बातों को क्या समझो ? तुम्हें कुलियों के झगड़े से फ़ुर्सत मिलती तो तुम्हें मैं पूरी बातें बताता। मुझे तो ऐसा लगता है कि रेखा मेरी हो चुकी है और मेरी ही रहेगी। शुरू में जब मेरा उसका नाता हुआ तो मैं उसे मामूली वेश्या ही समझता था और अपनी प्यास बुझाने उसके पास चला जाया करता था, लेकिन धीरे-

धीरे मुझे पता चला कि वेश्याओं के भी दिल होता है। रेखा हृदय हीन नहीं है। अगर मुझे थोड़ी भी देर हो जाती है तो वह घबराने लगती है। कहती है "कहाँ लगा दी इतनी देर, मैं घबरा रही थी।" इसकी इन बातों में कितना भोलापन, कितनी सिन्सीयारिटी है!

"सिन्सीयारिटी और वेश्यायें? रमेश, मैं इस बात को समझ नहीं सकता कि रेखा तुम्हारी ही होकर रहेगी। ऐसा हो नहीं सकता। उसे अपना पेट पालना है, पेशा सँभालना है। अभी जवान है। कमाने के दिन हैं। जब उम्र ढल जायेगी तो उसे कोई पूछेगा भी नहीं। यह बात वह जानती है। इस समय अगर वह पैसा नहीं पैदा कर लेती तो आगे क्या करेगी, क्या खायेगी! इसलिये वह ज़्यादा धन कमाने की कोशिश करेगी। धन कमाने की धुन में वह कितने कोमल हृदयों को पैरों के तले कुचल देगी, कितने भोले तरुणों की ज़िन्दगी बर्बाद कर देगी, कितने बसे हुये घरों को उजाड़ देगी! इसकी उसको क्या पर्वाह कि उसके प्रेमी मिटते हैं या बनते हैं! रूप का सौदा करने निकली है। अपनी निखरी जवानी, अपने रूप-लावण्य का वह दाम चाहती है। जो भरपूर क़ीमत देगा वही उसे पायेगा। ख़रीदारों में प्रतियोगिता होगी तो उसका रेट भी बढ़ेगा। इसी तरह रेखा का काम चलेगा। इतनी सीधी सी बात तुम नहीं समझते रमेश!"

"यह तुम्हारी ज़्यादती है। माना कि रेखा वेश्या है। वेश्यायें किसी की नहीं होतीं यह भी मानता हूँ। लेकिन इसके माने यह तो नहीं कि रेखा मेरी नहीं हो सकती। एक आम सिद्धान्त को सभी पर लागू तो नहीं किया जा सकता।"

"रेखा वेश्या है। वेश्यायें किसी की नहीं हो सकतीं। रेखा भी किसी की नहीं हो सकती। वह तुम्हारी भी नहीं हो सकती। तुम उसके मोह में फँस कर अपनी जवानी ख़राब कर रहे हो। इतनी बड़ी

जायदाद, ख़ानदान का नाम, सभी तुम मिटा रहे हो, उस छोकरिया के चक्कर में। तुम मेरे दोस्त हो इसीलिये मैं कहता हूँ, वरना मेरा क्या!"

"यह तो मैं मानता हूँ। तुम्हारी नेक-नीयती पर मुझे पूरा भरोसा है। लेकिन मैं फिर कहता हूँ कि तुम रेखा के साथ ज़्यादती कर रहे हो। अगर तुम उसे नज़दीक से देखते और जानते तो शायद तुम्हारी ऐसी राय न होती। मैं तो तुम से यही कहूँगा कि रेखा के पास चलो मेरे साथ। उससे बातें करो, उससे मिलो और तब अपनी राय क़ायम करो।"

"मुझे इन फ़ज़ूल कामों के लिये फ़ुर्सत नहीं है। तुम दीवाने हो गये हो, अपनी बुद्धि तुमने रेखा के हाथों बेच दी है, इसीलिये ऐसी बातें कह रहे हो।"

"प्रेम, नाराज़ मत हो। मैं नीच सही, गिरा हुआ, दीवाना, पागल सभी कुछ सही, फिर भी तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे दोस्त हो। तुम्हें मेरा साथ देना होगा। अगर मैं ग़लत रास्ते पर हूँ तो तुम्हें मुझे ठीक रास्ते पर लाना होगा। मैं लाख ख़राब होने पर भी इतना पागल नहीं हो गया हूँ कि तुम्हारी बातें न मानूँ।"

"मेरी बातें मानोगे? तुम झूठे हो। कितनी बार मैंने तुमसे कहा कि रेखा का साथ छोड़ो, लेकिन मेरी बात मानी तुमने? मीठी-मीठी बातें करके मुझे भुलावे में डालने की कोशिश क्यों करते हो? मैं जानता हूँ कि तुम्हारा दिल ज़बान एक नहीं है। वह दिन याद है तुमको जब कि तुम अपनी छोटी से छोटी बातें मुझसे कह दिया करते थे, मेरी बातों को ईश्वर वाक्य समझते थे? अब क्या है? अब मुझसे मुँह क्यों चुराते हो? आज कितने दिनों पर आये हो? दो ही महीने के अन्दर तुम्हारी यह हालत हो गई? जाके आईने में अपनी शक्ल तो देखो।"

"प्रेम, सुनो तो, तुम तो आवेश में आ रहे हो..."

"आवेश में आने की बात ही है। दुनिया जानती है कि प्रेम-रमेश

में गहरी दोस्ती है। लोग मुझे तुम्हारी वजह से दस बातें सुनाते हैं। लेकिन मुझे सुनना पड़ता है। मेरे पास जवाब ही क्या है? यह तो कह नहीं सकता कि रमेश से मुझसे कुछ मतलब नहीं। तुम्हारी करनी का फल मुझे भोगना पड़ता है। तुम मोहब्बत करते हो, मैं उसका ख़मियाज़ा भुगतता हूँ। रमेश, मैं तुमसे साफ़ कह देता हूँ कि अगर रेखा से तुम अपना नाता नहीं तोड़ोगे तो मुझे तुमसे अपना नाता तोड़ना पड़ेगा। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरे साथी को कोई ऐसी-वैसी बातें कहे।"

रमेश चुप हो गया। बोलता भी क्या? कड़ी डाँट पड़ गई थी। प्रेम की बातों का जवाब तो वह दे सकता था। लेकिन उसने चुप रहना ही ठीक समझा। प्रेम ग़ुस्से में था। बहुत दिनों से सोच रहा था कि अब रमेश को कड़ी फटकार सुनानी पड़ेगी। आज मौक़ा मिल गया। वह कहता गया "देखो रमेश, मेरा दिल जला हुआ है। तुमसे बहुत बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। तुमने सब पर पानी फेर दिया। तुमने कविता कितने दिनों से नहीं लिखी? कहानियों का क्या हश्र हुआ! संपादकों के पत्रों का कितने दिनों से जवाब नहीं दिया? तुम्हारी नावेल का क्या हुआ? दो महीने पहिले तुमने नावेल समाप्त कर लेने का वादा किया था। अभी कुल २० पेज लिखे गये हैं! यह सब क्यों और कैसे हुआ? अभी तुम्हारे उभरने के दिन हैं। अख़बारों और पत्रिकाओं में तुम्हारा नाम चमकने लगा था। सम्मेलनों में बुलाये जाने लगे थे। इतनी कम उम्र में तुम्हें इतनी सफलता मिल गई यह कम बात नहीं है। लेकिन तुम रेखा देवी के दरवाज़े की धूल फाँक रहे हो। तुमने मुझे ही नाउम्मीद नहीं किया। तुमने उस समाज के साथ भी ग़द्दारी की है जो कि तुमसे बड़ी-बड़ी चीज़ों की आशा रखता था। रमेश, बहुत दुख के साथ मैं यह सब कह रहा हूँ, लेकिन मैं मजबूर हूँ।"

प्रेम रुक गया। जैसे कुछ सोच रहा हो। कुछ देर सन्नाटा रहा। रमेश ने कई बार कुछ कहने के लिये सोचा। लेकिन उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। उसे लग रहा था कि प्रेम ठीक कह रहा है। "मैंने मुंह

चुराया, आना कम कर दिया, वादाखेलाफ़ी की, कविता, कहानी नावेल जहाँ की तहाँ धरी रह गई। लेकिन इसमें बेचारी रेखा का क्या क़सूर ? उसने मुझे इन कामों के लिए मना तो नहीं किया। यह तो मेरी ही कमज़ोरी थी। प्रेम रेखा के ऊपर क्यों इतना बिगड़ रहा है ! प्रेम अभी रेखा को जानता नहीं। कूड़े में भी हीरे की कनी मिल सकती है। हीरे की चमक देखकर कौन बटोही उसे उठा लेना न चाहेगा ! अगर मैंने ऐसा किया तो कोई बुरा नहीं किया। प्रेम इस नज़रिए से चीज़ों पर ग़ौर नहीं कर रहा है। बस, यह बात खल गई कि मेरा नाम पत्र-पत्रिकाओं में आज-कल नहीं निकल रहा है। ठीक तो है, अपना शौक़ पूरा न हो तो इनसान खीझ उठता ही है। प्रेम का खीझना ठीक है।

रमेश सर नीचे किये यही सब सोचता रहा था ! प्रेम ने समझा रमेश बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था। शायद ठीक भी समझ रहा था। लेकिन वह कुछ बोलता क्यों नहीं ? उसने कहा, "रमेश चुप क्यों हो ? बोलो कुछ !"

"क्या बोलूँ ? सब कुछ तो तुमने कह डाला। तुम्हारी शिकायत बेजा नहीं है। तुम्हें मेरी कृतियाँ प्रकाशित होती हुई बहुत दिनों से दिखाई नहीं पड़ीं, इसलिए तुम बिगड़ रहे हो। मैं दोषी हूँ। मैंने तुम्हारे शौक़ को पूरा नहीं किया ! तुम्हारा गुस्सा होना स्वाभाविक था। लेकिन इसमें रेखा का क्या क़सूर, यही मैं सोच रहा हूँ !"

"रेखा का क़सूर ? रेखा का क़सूर यह है कि उसने तुम्हारे अन्दर के कलाकार को मार डाला, कुचल दिया। उसने तुम्हें मुझ से दूर कर दिया। अगर यही हाल रहा तो हम दोनों एक दूसरे से बहुत अलग दिखाई पड़ेंगे। उस दिन की कल्पना करो जब कि तुम मेरे पास आना बन्द कर दोगे, सड़क पर भेंट होगी तो मुंह फेर कर चले जाओगे। मैं कहता हूँ रमेश, ऐसा दिन आने वाला है।

रेखा में अपने सारे स्नेह को केन्द्रित कर लेने के बाद तुम इस लायक़ न रह सकोगे कि हम लोगों को याद कर सको अथवा अपनी कला का विकास कर सको—उस दिन मैं पछताऊँगा. तुम मेरे ऊपर हँसोगे।"

रमेश सिहर उठा। उसके भविष्य का क्या यही सच्चा नक़्शा है ? रेखा के साथ आजीवन रहने का सुखद सपना इस ज्वलन्त सत्य के सामने मानों पिघलने लगा। रमेश ने फिर कोशिश की कि वह प्रेम को समझाये कि ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन प्रेम और चिढ़ गया। उसकी आवाज़ तेज़ हो गई। ज़ोर-ज़ोर से कहना शुरू किया।

"होगा. और ऐसा ही होगा। जिस समाज में तुम पल रहे हो उसमें इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। लोक-लाज छोड़कर, स्नेही साथियों की शुभकामनाओं पर लात मार कर मनमानी करने वाले व्यक्ति के भविष्य का यही नक़्शा है। एक कुत्सित नारी के मोह में पड़कर रमेश, तुम जो अनर्थ करने जा रहे हो, उसकी क्षमा तुम्हें नहीं मिलेगी। न मैं तुम्हें माफ़ कर सकता हूँ, न समाज !"

"तुम्हारी तो मुझे परवाह है, लेकिन समाज की नहीं" रमेश ने भी ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा, "तुम जाने किस समाज की बात बार-बार किया करते हो। जिस समाज पर तुम इतना ज़ोर दे रहे हो वह समाज अंधा और स्वार्थी है। उसी समाज ने इन औरतों को वेश्या बनाने के लिए मजबूर किया। जब ये औरतें वेश्या बनने पर मजबूर हो गईं और अपनी अस्मत बेचकर रोटी कमाने लगीं तो तुम्हारा समाज उन्हें घृणा करने लगा। घृणित समाज है, वेश्यायें नहीं। ताज्जुब है कि तुम उसी समाज का समर्थन कर रहे हो।"

प्रेम को बुरा लगा। वह समाज का समर्थन नहीं कर रहा था। लेकिन काल और रीति का ध्यान तो करना ही पड़ेगा। समाज में लाखों बुराइयाँ हैं। समाज की बुराइयों को दूर करने का यह ढंग तो नहीं है कि आदमी उन्हीं बुराइयों का स्वयं शिकार हो जाय। समाज

की बुराइयों को दूर करने के लिये समाज के खेलाफ़ विद्रोह करना होगा, उसकी कुरीतियों की कठपुतली बनने से काम नहीं चलेगा। प्रेम ने कहा, "यदि जीवन से आप को ('तुम' से 'आप' का हो जाना स्वाभाविक था, प्रेम क्षोभ और आवेश में बोल रहा था) संतोष नहीं है, यदि समाज आपके लिये प्राण-घातक रोग है और यदि संसार आप को अंधकार पूर्ण रेगिस्तान मालूम होता है तो आप के लिये दो ही रास्ते हैं—रो-रोकर ऐड़ियाँ रगड़ते हुये मरना-अथवा विद्रोह करना। विद्रोह करना आप के बूते की बात नहीं है। ऐड़ियाँ रगड़ना अपना पेशा बना लीजिये, बस!"

रमेश अचकचा गया। यह क्या ? प्रेम मुझे 'आप' करके सम्बोधित क्यों कर रहा है ! उसे आश्चर्य हुआ, फिर ख़्याल आया प्रेम आवेश में आकर इस प्रकार कह रहा है। वह बोला नहीं, चुप सुनता गया। उसे अच्छा लग रहा था।

"रमेश, ऐड़ी रगड़ने वाला व्यक्ति घृणा का पात्र है, दया का पात्र है। दया का भिखारी अपने को इनसान नहीं कह सकता। आज के समाज ने एक इनसान को दूसरे इनसान पर आश्रित रहने के लिये मजबूर कर दिया है। समाज की चक्की में सभी प्राणी पिसते चले जा रहे हैं। समाज के विरुद्ध जो कोई सिर उठाता है फ़ौरन कुचल दिया जाता है। समाज के सुधारक वे हैं जो कि समाज की परिपाटी के ख़िलाफ़ जा नहीं सकते, उनमें इतना दम नहीं। इसीलिये वे इतना लीपा-पोती करते रहते हैं। लेकिन जो विद्रोही हैं वे समाज की बुराइयों पर लीपा-पोती करने में विश्वास नहीं करते। वे समझते हैं समाज के मूल में परिवर्तन की आवश्यकता है। इस मौलिक परिवर्तन के लिये मौलिक प्रश्नों का हल ढूँढना पड़ेगा···"

"प्रेम, तुम तो बहुत दूर निकल गये। अभी मुझे रेखा से अलग रहने के लिये और समाज की रीति का ध्यान रखने के लिये कह रहे थे और अभी इसके उलटे समाज में मौलिक परिवर्तन लाने की बात कह रहे

हो। दोनों में क्या सम्बन्ध है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि आवेश में आकर तुम असली बातों को भूल गये।''

''नहीं भाई, भूल तो नहीं गया। हाँ, आवेश में ज़रूर आ गया था। तुम्हारे ऊपर ग़ुस्सा आया, पुराना ग़ुबार था, निकालना चाहता था। अच्छा हुआ, ग़ुस्सा तो निकल गया अब बातें समझा दूँ। देखो बुरा न मानना, सीख देने नहीं बैठा हूँ, अपने मन की बात कहना चाहता हूँ। हाँ, मौलिक परिवर्तन की बात कह रहा था। समाज के मूल में क्या बात है ! किस आधार पर समाज का निर्माण होता है, समाज का आपसी सम्बन्ध, समाज का मनोविज्ञान, समाज का आचार-विचार, नियम आदि के मूल आधार क्या हैं, कभी सोचा तुमने ! नारी जाति की यह दुर्दशा क्यों है ? इस पर कभी भी तुमने ग़ौर किया ! मैं कहता हूँ अगर इन बुराइयों को दूर करना है तो हमें इनके मूल तक पहुँचना होगा। नारी जाति के ही प्रश्न को लेलो। इसकी दुरावस्था का कारण है पुरुषों द्वारा शासित समाज, जिसने उसके साथ युगों से अन्याय किया है। सारी दुनियाँ में, पुरुष नारी का पति, मालिक, पालक और रक्षक रहा है। परम्परागत ग़ुलामी, दूसरों पर निर्भर रहने की आदत और परमुखापेक्षी बनी रहने की वजह से नारी जाति में आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन के गुणों का लोप हो गया। प्रकृति ने नारी को रूप दिया, लावण्य दिया, मधुराई दी, आकर्षण दिया। उसकी बोल-चाल, रहन-सहन, सब में यही विशेषता मिलेगी। इन गुणों से वह पुरुष पर शासन करती है लेकिन इन्हीं गुणों से वह पुरुष पर निर्भर भी रहती है। नारी की इसी अवस्था से फ़ायदा उठा कर पुरुष उसका दुरुपयोग करता है, मनमाना व्यवहार करता है और अपनी इच्छा के अनुसार उसके भाग्य का निर्णय करता है। समाज में शासनसूत्र और आर्थिक व्यवस्था पुरुषों द्वारा संचालित होती है। नारी पुरुष की ग़ुलाम है, इसलिये शोषित और शासित होना उसके भाग्य की अटल रेखा है, ऐसी रेखा जो मिटाई नहीं जा सकती। तब, अगर नारी भूख की ज्वाला

से परेशान होकर वेश्या-वृत्ति के लिये मजबूर हो जाती है तो उसे दोष क्यों दिया जाय ? समाज की ज़िम्मेदारी, पुरुषों की ज़िम्मेदारी के लिये औरतों को कोसना, औरतों को प्रताड़ित करना न्याय नहीं है। वेश्या-वृत्ति का मूल कारण योनि प्रक्रिया का स्वाभाविक आनन्द नहीं, पेट की ज्वाला, ग़ुलामी, शोषण और निराशा है····· ।"

रमेश को आनन्द आ रहा था। प्रेम का चेहरा तमतमा उठा था। जैसे अन्दर की सोई हुई चिनगारी शोला बनकर दहक रही हो। बोलते-बोलते उसके घूंसे बँध जाते। ज़ोर देने के लिये वह रह-रह कर टेबुल पर हाथ दे मारता। रमेश ने सोचा यह अच्छा हुआ। अगर मैंने रेखा का सवाल न उठाया होता तो प्रेम इतने आवेश में ऐसी बातें कैसे कहता ?

"प्रेम, तुम कहते जाओ, मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। आज पहिली बार तुम्हारे मुँह से मुझे ऐसी बातें सुनने को मिल रही हैं। सच कहता हूँ प्रेम, मुझे बहुत अच्छा लग रहा है।"

"वाह, क्या मैंने अच्छा लगने के लिये ही ये बातें कहीं हैं ? तुम भी क्या आदमी हो रमेश ?"

"नहीं मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो कह रहा हूँ कि तुम आज पहिली बार इतना खुल कर इस समस्या पर बातें कर रहे हो। मैं चाहता हूँ तुम कुछ और कहो।"

जब हम इस बात को अच्छी तरह समझ लें तो फिर रास्ता आसानी से निकल आयेगा। मैं सोचता हूँ कि तुम अपने लिये रास्ता चुनने के पहिले इस प्रश्न की गहराई तक पहुँचने की कोशिश कर लो। तुम देखोगे कि इसी के ज़रिये तुम्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिलेगी। रमेश, तुम यह तो मानोगे ही कि रेखा को तुमने इसलिये प्यार नहीं किया कि तुम उसका उद्धार करना चाहते थे। तुम्हारे प्रेम का कारण थी तुम्हारी कमज़ोरी। इस कमज़ोरी को तर्क का आवरण देने से क्या फ़ायदा !

कमज़ोर और दुर्बल व्यक्ति विद्रोह नहीं कर सकता। तुम्हारे प्रेम में विद्रोह की भावना नहीं है।"

"ठीक है। रेखा मेरे जीवन का सबसे कमज़ोर हिस्सा है। लेकिन अब तो वह मेरे जीवन का हिस्सा बन ही गई है। कमज़ोर हो या मज़बूत, अब उसे अपने जीवन से अलग करना मेरे लिये मुमकिन नहीं है। मैं चाहता था कि तुम भी उससे मिल लेते। शायद तुम्हारी बातों का उसके ऊपर असर पड़े और वह भी अपने कर्तव्यों को समझने लगे। प्रेम, चलोगे मेरे साथ रेखा के पास?"

"नहीं, मैं उस कुत्सित वातावरण की हवा से घबराता हूँ। यों ही लोग उँगली उठाते नहीं चूकते। जब वे तुम्हारे साथ मुझे भी रेखा के पास जाते देखेंगे तो न जाने क्या माने लगायेंगे।"

"इसके माने यह हुये कि तुम कायर हो। जिस समाज के ख़िलाफ़ विद्रोह करने के लिये कहते हो, उसी की अंगुश्तनुमाई से घबराते हो। जब तुम्हारे दिल में चोर नहीं तो समाज से क्यों डरते हो? अगर तुम्हारे जाने और बातें करने से रेखा के जीवन में कुछ फ़र्क आ जाय तो इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है, समाज क्यों नाक-भौं सिकोड़ता है? और उससे तुम घबराते क्यों हो?"

"रमेश, तुम एक बात भूलते हो, वह यह कि जिस काम को करने निकलो उसकी सफलता का पूरा बन्दोबस्त कर लेना चाहिये। अगर आज हमारे ऊपर लोग उँगली उठायें तो उसका क्या असर पड़ेगा? तुम जानते हो मैं चरित्र की पुरानी धारणाओं और ढकोसलों को नहीं मानता। लेकिन उन ढकोसलों को ख़त्म करने के लिये हमें सजग होकर क़दम बढ़ाना चाहिये।"

"लेकिन सजग होने के माने यह तो नहीं कि तुम डर कर अपना कर्तव्य करना बन्द कर दो। इसमें कोई शक नहीं कि 'रामगंज' जाने वालों को लोग अच्छी निगाह से नहीं देखते। लेकिन वही लोग अगर मौक़ा पावें तो ख़ुद 'रामगंज' जाना चाहेंगे। मैं यह नहीं कहता कि तुम अपना

सब काम छोड़ कर वेश्याओं का सुधार करने लग जाओ। लेकिन वहाँ चल कर दो मिनट बातें कर लेने से तुम्हारे शरीर में धब्बा नहीं लग जायेगा।''

"तुम समझे नहीं। मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि तुम उस वेश्या से मोहब्बत करते हो इसलिये उसकी सब बातें तुम्हें अच्छी लगती हैं। इसीलिये तुम मुझे भी उससे मिलाना चाहते हो। उसके हाव-भाव, नाज़-नख़रे देखकर मैं उसे अच्छा समझने लगूं यही तुम चाहते हो। यह तुम्हारी भावुकता और कमज़ोरी की निशानी है। मैं अभी जो कुछ कह रहा था वह बिलकुल दूसरी बात थी। मैं एक आम उसूल की बात कह रहा था। नारी जाति के प्रश्नों को अगर समझना और हल करना हो तो उसके मूल तक हमें पहुँचना होगा। इसी तरह समाज की बुराइयों को दूर करने के लिये हमें पूरे समाज की बनावट, उसकी मूल भित्तियों का पूरा विश्लेषण करना होगा। इन प्रश्नों का हल आसान नहीं है। मैं तो विश्वास करता हूँ कि वर्तमान सामाजिक ढाँचा इतना विकृत और कुरूप हो गया है कि उसमें लीपा-पोती से काम नहीं चलेगा। इस ढाँचे के अंजर-पंजर को तोड़ कर उसमें आग लगा देनी होगी। उसके स्थान पर एक नवीन समाज का निर्माण करना होगा, जिसके आपसी रिश्ते आचार-विचार के नियम सभी बिल्कुल नये होंगे। नई नींव पर खड़ी यह नई इमारत आलीशान होगी। उसमें नई रोशनी की सुनहली किरणें बिखर सकेंगी। उसमें नई हवा आकर जीवन प्रदान कर सकेगी। आज की गन्दगी और ग़लाज़त के लिए उस इमारत में जगह न होगी। लेकिन यह तो बिल्कुल दूसरी बात रही। जहाँ तक 'रामगंज' जाकर रेखा से मिलने का सवाल है मैं उसके लिये बिल्कुल तैय्यार नहीं हूँ। इसलिये नहीं कि मैं रेखा से घृणा करता हूँ अथवा देखने वालों से डरता हूँ, बल्कि इसलिये कि मेरा वहाँ जाना और रेखा से इस तरह की बातें करना बिल्कुल फ़िज़ूल और बेमतलब है। वहाँ के वातावरण में मेरी बातें खपेंगी नहीं। रमेश, मैं तुम्हारी उत्सुकता के कारण को समझता हूँ। लेकिन तुम मुझे मजबूर मत करो।''

रमेश को प्रेम की ये लम्बी-चौड़ी सिद्धान्त की बातें अच्छी नहीं लगीं। वह चाहता था कि प्रेम 'रामगंज' चलकर रेखा से मिल आवे। इसका नतीजा अच्छा होगा। कम से कम उसकी तरफ़ से तो प्रेम का रुख़ अच्छा हो ही जायेगा। लेकिन प्रेम चलने के लिये तैय्यार नहीं होगा। उसने तो निश्चय-सा कर लिया है कि वह रेखा के सवाल पर ग़ौर नहीं करेगा। उठते हुये कहा "अच्छी बात है, मैं जाता हूँ। तुम फिर सोचना।"

"नाराज़ मत हो भाई, इतने भावुक हो जाओगे तो कैसे काम चलेगा ! ज़रा मेरी बातों पर ग़ौर तो करो, मैं वहाँ जाकर कहूँगा क्या !"

"मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम्हारे जो मन में आवे करो। हाँ, जब फिर डाँटने की तबीयत हो तो मुझे पहिले से ख़बर दे देना। तुम्हारा लेक्चर सुनूँगा और बैरंग वापस चला जाऊँगा" कहता हुआ रमेश बाहर चल दिया।

रात काफ़ी हो चुकी थी। दस बजने वाले थे। प्रेम छत पर चला गया। ज़रा ठंडी हवा चल रही थी। लेटे-लेटे सोचने लगा। "ये तारे कितने लुभावने हैं। चाँद भी मुस्कराने का आदी है। दोनों मिलकर आसमान के आँचल को जगमगाते रहते हैं। इस समय कितने पीड़ित हृदय युवक इनको देखकर आहें भरते होंगे, कोसते होंगे। चाँद का मुस्कराना, तारों का चमकना, इनमें अन्तर नहीं आता। लेकिन लोग अपनी-अपनी आँखों से इन्हें देखते हैं। अपनी परिस्थिति के अनुसार दुखी होते हैं और आनन्द विह्वल भी। मनुष्य का हृदय कितना भावुक एवं कितना कमज़ोर होता है। रमेश रेखा के पीछे दीवाना है। उसके लिये उसकी रेखा सबसे प्यारी वस्तु है। अपनी प्यारी वस्तु को अपने साथी को दिखाने में आनन्द आता ही है। लेकिन रमेश को क्या मालूम कि जिस दुनियाँ में वह रहता है उससे बड़ी भी एक दुनियाँ है, जिसमें भूख, प्यास, ग़रीबी, बेबसी और पीड़ा का दौर-दौरा रहता है।

रमेश आया, इतनी देर रहा लेकिन कुलियों की हड़ताल का उसे ध्यान ही नहीं आया। कुलियों की बस्ती में, भूख की मारी, अपने ही पति द्वारा प्रताड़ित, सिसकती हुई सोना की कल्पना भी रमेश नहीं कर सकता। वह रेखा के हाव-भाव, रूप-रंग, नाज़-अदा, कोमलता, मधुरता, लावण्य और रूप के जाल में फँसा हुआ है। उसकी दुनियाँ कितनी छोटी और सीमित है ? मेरी बातें उसे अच्छी लगीं, लेकिन उन्हें वह समझ नहीं सका। कितने दुख की बात है रमेश, कवि, कलाकार रमेश, एक नव यौवना वेश्या की माया में फँस अपनी सारी प्रगति और उन्नति को तिलांजलि दिये दे रहा है। उसकी कल्पना इस साकार रूप को पाकर स्वयं कुण्ठिता हो रही है। अपने विशाल हृदय में एक मूर्ति को बिठाकर उसी की आराधना में अपना सारा समय नष्ट करने वाला रमेश समाज की दुखद अवस्था और उसकी शिकार नारी जाति की सभी समस्याओं की ओर से मुँह मोड़ चुका है। क्या अब भी उसकी कविताओं में वही तेज़ी, चुस्ती और उभार रहेगी ? मुझे तो शक है। रमेश का कलाकर मरता जा रहा है। अब क्या किया जाय ?" प्रेम का दुखी मन रोना चाहता था। अपने साथी, अपने अभिन्न की यह दयनीय दुर्दशा उसे पीड़ा पहुँचा रही थी।

प्रेम बिस्तर पर यों ही पड़ा बहुत देर तर्क सोचता रहा। उसे सोना की भीगी पलकें याद आईं। रम्मू ने सोना को इसीलिये मारा कि वह हड़ताल को चलने देना चाहती थी, वह युनियन अथवा उसकी शिकायत नहीं सुनना चाहती थी। उसे यह बर्दाश्त नहीं था कि रम्मू उसके कामरेड को बुरा भला कहे। समझाने पर मार खानी पड़ी और सरेआम बेइज़्ज़त होना पड़ा। सोना की भीगी आंखें उसकी भीतरी करुणा की दुहाई दे रही थीं। नशे में मस्त रम्मू यह नहीं जानता था कि वह एक बेक़सूर और निष्कपट युवती पर हाथ छोड़ रहा है। सोना ने तो शायद रम्मू को माफ़ कर दिया होगा, लेकिन क्या रम्मू को सचमुच माफ़ किया जा सकता है ? नारी जाति की इस अवस्था के

लिये ज़िम्मेदार कौन है ? वही समाज जिसने रेखा को वेश्या बनाया और वेश्या बन जाने पर उसे घृणा का पात्र क़रार दे दिया। रमेश ने कितना ठीक कहा था, 'घृणित वेश्यायें नहीं हैं, घृणित समाज है।' जिस समाज ने अपनी अच्छी से अच्छी ललनाओं को वेश्या बनने के लिये, तिरस्कृत और प्रताड़ित होने के लिये मजबूर किया, वह समाज जितनी जल्दी नष्ट हो जाय अच्छा है। प्रेम का हृदय इस समय घृणा और क्रोध से भरा हुआ था।

उठकर प्रेम ने बत्ती जलाई और लुई को उत्तर लिखा।

'शंकर विला'

मेरी लुई २७ जून १९४०

लम्बा पत्र लिखना चाहता था। लेकिन इस समय आवेश और प्रतिहिंसा की वजह से कुछ लिख नहीं पा रहा हूँ। अभी रमेश आया था। उससे रेखा के बारे में बातें हुई ! वह तो जैसे रेखा का ही हो गया है। इस चक्कर में फँसने के कारण उसकी पढ़ाई-लिखाई बन्द है। इधर एक भी कविता नहीं लिखी। कहानी और उपन्यास की तो शायद उसे याद भी नहीं रही। मुझे इसका बड़ा दुख है। मैंने आज उसे बहुत डाँटा ! वह सब सुनता रहा, फिर रेखा से मिलने के लिये ज़ोर देने लगा। मुझे उसका यह इसरार अच्छा नहीं लगा। मैंने साफ़ इनकार कर दिया। मैं अभी यह नहीं कह सकता कि मैंने ठीक किया या ग़लत। हाँ, उसे मैंने नारी जाति की समस्याओं पर एक लेक्चर ज़रूर पिला दिया।

कुलियों की हड़ताल का अभी वही हाल है। मि० आलम से मिलने गया था। उन्होंने वादा तो किया है कि वे साहब से मिलकर मामला तय कर देने की कोशिश करेंगे। लेकिन मि० आलम से बहुत कम उम्मीद है। मीठा बोलने वाले आदमी हमेशा ख़तरनाक होते हैं। मि० आलम ठीकेदार और साहब पर कितना दबाव डाल सकते हैं, मैं कह नहीं सकता। हड़ताल समाप्त होते ही ख़बर दूँगा।

अभी मैं कुलियों की बस्ती में गया था। वहाँ रम्मू नाम का एक कुली रहता है। बेचारा इतने दिनों की हड़ताल से परेशान हो गया था। एक दिन चुकड़ चढ़ा कर आया और अपनी स्त्री को इसलिये पीटा कि वह युनियन का साथ देना चाहती थी। मुझे उसकी निर्दोष और आँसू से भरी आँखें अब भी याद हैं। उसकी याद करके मेरा दिल कचोटने लगता है। क्या करूँ ? कुलियों की दशा दिनों-दिन ख़राब होती जा रही है।

तुम्हारी चिट्ठी जो पढ़ी तो मेरा दिल और भी बैठ गया। पापा की मनोदशा का अन्दाज़ कुछ तो मैं यहाँ से लगा ही सकता हूँ। चाहता था मैं जल्दी तुम्हारे पास आ जाता। इससे शायद तुम्हारी परेशानी में हिस्सा बँटा सकता। लेकिन मैं मजबूर हूँ। यहाँ की परिस्थिति ऐसी नहीं है कि मैं शहर छोड़ कर कहीं जा सकूँ। मुझे आशा है कि तुम बुरा न मानोगी।

मि० यंग ने बोलना छोड़ दिया। उनसे इसी बात की आशा भी थी। चलो अच्छा हुआ। हमेशा के लिये झंझट दूर हुआ। मैं जानता हूँ अब पापा उनसे शादी करने के लिये तुम्हें मजबूर नहीं करेंगे। पापा को किसी प्रकार ख़ुश रखो। उनको अब दुख न होने पावे।

इस 'शाक' के बाद पापा को और कष्ट मत देना। अगर पालिटिक्स वग़ैरह की बात आवे तो भी आवेश में आने की ज़रूरत नहीं है। धीरे-धीरे पापा की भी आदत पड़ जायेगी। तब सब काम ठीक से चलने लगेगा। जैसी परिस्थिति है उसे देख कर मैं यह सोचता हूँ कि वापस आकर तुम्हें भी अपने काम के क्षेत्र को बढ़ाना पड़ेगा। 'विद्यार्थी संघ' की चार दिवारी से निकल कर जनता में काम करने का दिन आ गया है। अब हर कामरेड को सीधे जनता में आकर काम करना पड़ेगा, ऐसा मुझे लगता है। साथियों की कमी से और सभी युनियनों का काम रुकता जा रहा है। इस समय इन युनियनों के ज़िन्दा रखने में

तुम्हारी सहायता की ज़रूरत पड़ेगी। आने पर तुम्हारा काम तय कर दिया जायेगा।

अपनी 'बिज़ी' ज़िन्दगी में तुम्हारी याद बराबर बनी रहती है। कब आओगी? पापा को प्रणाम।

तुम्हारा अपना,
प्रेम

पु०

हाँ, एक बात और। जहाँ तक हो सके मि० यंग से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखना। उनसे झगड़े की बात मत करना।

प्रेम

पत्र पूरा करके प्रेम ने संतोष की साँस ली। वह अब भी अच्छी तरह निश्चय नहीं कर सका था कि पापा को दो-टूक जवाब देकर लुई ने अच्छा किया या नहीं। प्रेम किसी भी क़ीमत पर पापा को ख़ुश रखना चाहता था। लुई भी मजबूर ही होकर पापा के सामने साफ़-साफ़ बातें कह पड़ी थी। लेकिन यह सब अच्छा ही हुआ। पापा को हमेशा के लिये पता चल गया कि लुई अब बच्ची नहीं है। वह अब सजग और समझदार हो चुकी है। यही नहीं कि अपनी शादी के बारे में ही निश्चयात्मक मत दे सकती है बल्कि यह भी कि लुई एक स्पष्टवादी दृढ़-प्रतिज्ञ युवती है, जो अपने भविष्य के सुख-सपनों पर, अपने पूज्य पिता की सारी आशाओं पर भी पानी फेर सकती है, केवल अपनी टेक, अपनी विचार धारा और आदर्श के लिये! प्रेम को यह जान कर बहुत संतोष हुआ। यद्यपि लुई अभी पूरी तरह कम्युनिस्ट नहीं हो पाई है फिर भी अगर वह जनता में काम करती रही और उसकी मार्क्सवादी पढ़ाई लिखाई ठीक तरह से चलती रही तो इसमें कोई शक नहीं कि लुई बहुत जल्दी एक अच्छी कामरेड हो जायेगी। प्रेम ने यह भी सोचा कि लुई को अब 'विद्यार्थी संघ' से धीरे-धीरे हटाना चाहिये। क्यों न अब उसे मज़दूर औरतों के संगठन का काम सौंपा जाय? उन औरतों में काम करने से वह सचमुच बहुत अनुभव प्राप्त कर सकेगी। जनता में काम किये बग़ैरह कोई सच्चा मार्क्सवादी हो भी नहीं सकता!

यही सोचते-सोचते प्रेम को नींद आ गई।

उधर रमेश का हाल बुरा था। रेखा के पास जाने के लिये उसके मन में उत्साह नहीं हो रहा था। प्रेम की फटकार के बाद यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसके मन में रेखा के प्रति अरुचि हो गई थी, हाँ, यह सच है कि वह उलझन में ज़रूर पड़ गया था। प्रेम उसका अभिन्न मित्र है। वह कभी उसकी बुराई नहीं सोच सकता। उसके आवेश से उसकी सिन्सीयारिटी का ही पता चलता था। प्रेम मुझे बहुत मानता है। वह मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी आशायें रखता है। उसे यह खलता है कि रेखा की वजह से मुझे अपनी कला के विकास के लिये मौक़ा नहीं मिलता। जब तक मैं यह साबित न कर सकूँ कि उसकी यह धारणा ग़लत है तब तक प्रेम को अधिकार है कि वह मुझे जितना भी चाहे बुरा-भला कहे और रेखा को कोसे। आज प्रेम ने अपने सहज स्नेह के अधिकार का ही प्रयोग किया है। हाँ, रेखा के साथ अन्याय ज़रूर हुआ है। मेरी रेखा बिल्कुल निर्दोष है। उसने मुझे हमेशा कहा है "अपने काम-धाम को देखा करो, दुनियाँ जानती है मैं वेश्या हूँ। ज़रा भी चूक हुई तो तुम्हारे स्नेही, सम्बन्धी मुझ को ही कोसेंगे।" कितना सच कहा था रेखा ने ! माना कि शाम का समय रेखा के साथ ही बीत जाता है, लेकिन दिन में तो मैं अपनी कविता-कहानी लिख ही सकता हूँ। यह तो मेरी ग़लती है। 'रेखा के यहाँ जाऊँ कि न जाऊँ ?' रमेश मन में यही सोचता चला जा रहा था कि एक सुरीली आवाज़ आई,

कोई मुझे सताये क्यों, कोई मुझे रुलाये क्यों ?
मैंने किसी का क्या किया........

यह तो रेखा की आवाज़ थी। रमेश रुक गया। आगे बढ़ना उसके लिये मुश्किल हो गया। रमेश के क़दम रेखा के घर की ओर अपने आप बढ़ने लगे। उसे ऐसा लगा कि कोई जबरन् उसे खींचे जा रहा है। रमेश न चाहते हुये भी रेखा की सीढ़ी पर चढ़ ही गया।

ऊपर महफ़िल जमी थी। नवाब माशूक़ अली खाँ साहब आज तशरीफ़ लाये थे। बहुत दिनों पर आपने रेखा को याद फ़र्माया था। नवाब साहब शौक़ीन तबा रईस थे। सारी जायदाद शौक पूरा करने में ही उड़ गई थी, फिर भी दिल थामे दाद दिया ही करते थे। बिगड़े नवाब थे लेकिन थे दरिया दिल। इस दरबार में एक दो बार पहिले भी हाज़िरी दे चुके थे। दिल न माना तो आज भी चले आये। आप ही की फ़र्माइश थी "वही सुना दो, 'कोई मुझे सताये क्यों.........!"

रमेश ने यह दृश्य देखा तो उसे न जाने कैसा लगा। वहीं रुक गया। तबला ठनक रहा था। सितारिया भी गर्दन घुमा कर सुर खींचे जा रहा था। रेखा पूरे ओज पर थी। हृदय में टीस पैदा कर देने वाली स्वर-लहरी कोमल, मधुर, व्यापक! रेखा गा रही थी–'कोई मुझे सताये क्यों.........!'

रमेश धीरे से आकर एक किनारे बैठ गया। किसी ने उसे नहीं देखा। वह मंत्र मुग्ध सा सुनता रहा। नवाब साहब सिर हिला-हिला कर दाद दिये जा रहे थे—"वाह, वाह! क्या ख़ूब!........"

गाना ख़त्म हुआ। नवाब साहब ने दो दस-दस रुपयों के नोट इनाम में आगे धर दिये। रेखा ने झुक कर तसलीम किया। रमेश का सामना नवाब साहब से हुआ तो वे बोल उठे, "वाह, लड़के बादशाह! तुम भी यहीं मौजूद थे!"

"जी हाँ, था तो!"

"क्या ख़ूब गाना था! कमाल करती हैं रेखा जान भी!"

"जी हाँ!" रमेश काँप उठा। 'रेखा जान' शब्द ने बिच्छू के डंक का काम किया। रमेश के लिये यह शब्द बिल्कुल नया और अपरिचित था। सत्तर बरस के बूढ़े नवाब साहब के मुंह से सोलह बरस की युवती रेखा के लिये यह शब्द रमेश को बहुत ख़राब लगा। वह चुप रह गया। रेखा भी कुछ नहीं बोली। नवाब साहब चलने लगे तो वादा किया।

"फिर हाज़िर होऊँगा किसी दिन!"

"बहुत ख़ूब, इनायत है आपकी। आदवर्ज़!"

"तसलीम, तसलीम!" नवाब साहब सँभाल-सँभाल कर सीढ़ी के नीचे उतर गये। इशारा पाकर तबलिया, सितारिया सभी चलते बने। रेखा ने रुआसी सी होकर कहा, "रमेश, कहां थे इतनी देर तक! मैं इन्तज़ार करती रही।"

"ज़रा आज प्रेम के पास चला गया था, देर हुई, माफ़ करना।"

"तुम तो ऐसे ही हमेशा कहा करते हो। मुझे तुम्हारी यह हरकत अच्छी नहीं लगती। कितनी बार कहा, जल्दी आया करो, बहुत इन्तज़ार कराते हो तुम!"

"मैं तो जल्दी ही आने की कोशिश करता हूँ। आज ज़रा देर हो गई।"

"तो, कल से तो देर नहीं करोगे?" पास आकर रेखा ने रमेश को अपनी ओर खींचना चाहा। रमेश सँभल कर बैठ गया।

"क्या हो गया है तुम्हें आज? ऐसे अनमने क्यों हो?"

"कुछ नहीं, यों ही सोच रहा था कि मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ।"

"सपना...कैसी बातें कर रहे हो!"

"नहीं रेखा, मेरे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। प्रेम ने आज मुझे बहुत डाँटा है। उसका डाँटना ठीक था। उसने कहा था, 'वेश्यायें किसी की नहीं होतीं...रेखा भी तुम्हारी नहीं हो सकती।' मुझे ऐसा लगता है कि उसकी बातें ठीक हैं। माफ़ करना, शायद मैं अपने होश में नहीं हूँ। नवाब साहब ने तुम्हारे नाम के आगे 'जान' जोड़ दिया। ऐसा लगा जैसे बिच्छू मार गया हो। उनकी उम्र देखकर मुझे शर्म मालूम पड़ती थी और तुम मुस्करा रही थी। मुझे यह बात समझ में नहीं आई।"

"लेकिन यह तो मेरा पेशा है, ऐसा न करूँ तो खाऊँगी क्या!"

"ठीक कहती हो रेखा, बिलकुल ठीक है यह बात! यही तो प्रेम भी कह रहा था, रेखा अपना पेशा छोड़ देगी तो खायेगी क्या! अभी तो कमाने के दिन हैं।"

"कौन ? प्रेम कौन ? वही तुम्हारे दोस्त, जिनकी अक्सर तुम चर्चा किया करते थे ? क्या सिखा दिया उन्होंने तुम्हें कि मिजाज़ ही नहीं मिल रहा है ?"

"देखो रेखा, मैं तुमसे साफ़-साफ़ बातें करना चाहता हूँ। बताओ, तुम मेरी हो कि नहीं ?" रेखा घबरा गई। यह जुमला तो वह कई बार रमेश के मुँह से सुन चुकी थी लेकिन पहिले उसमें मोहब्बत और आजिज़ी का पुट रहता था। आज रुखाई और उखड़ापन है। रेखा इसके लिये तैय्यार न थी। वह कुछ जवाब न दे सकी। चुप रह गई।

"बोलो, बोलती क्यों नहीं ?" रमेश ने उतावलेपन से कहा।

"हाँ, तुम्हारी हूँ।" रेखा घबराहट में कह गई। रमेश का अविश्वास और बढ गया। बोला, "लेकिन दिल यह मानने के लिये तैय्यार नहीं है। मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम झूठ कह रही हो रेखा ! यह सब ऊपर की बनावटी बातें हैं। मुझे कुछ शक होने लगा है।"

"क्यों, क्या बात है ? आज कैसी उखड़ी-उखड़ी बातें कर रहे हो ! मैं तो पागल हुई जा रही हूँ। बताओ न क्या बात है ? तुमको मेरे ऊपर शक हो रहा है, क्यों क्या हुआ ? रमेश, मैं तुम्हारी हूँ, सिर्फ़ तुम्हारी।" रेखा जल्दी-जल्दी कह गई।

रमेश की समझ में कुछ नहीं आया। अविश्वास रहते हुये भी उसका जी चाहता था कि वह रेखा की बातों पर पूरा यक़ीन कर ले। वह रेखा पर विश्वास करना चाहता था, लेकिन लाचार था। उसके दिल में जैसे कोई कह रहा था, 'रेखा तुम्हारी नहीं है, वह तुम्हारी हो नहीं सकती।' रमेश उठ खड़ा हुआ, बाहर जाने के लिये। रेखा परेशान हो गई। उसकी हालत ख़राब थी। समझ नहीं पा रही थी मामला क्या है। रमेश को आजिज़ी के साथ रोकती हुई बोली, "अरे, सुनो तो।"

"नहीं, मुझे जाने दो, मेरा जी घबरा रहा है। फिर आऊँगा।"

"नहीं, जाओगे कैसे ? कहाँ जाओगे, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।" रेखा ने रमेश को ज़बरदस्ती बिठा लिया। फिर उठ जाने की क्षमता रमेश में नहीं थी। थोड़ी देर में रमेश का सिर रेखा की गोद में था। रेखा अपनी उगँलियाँ रमेश के बालों में फेर रही थी। रमेश चुप रहा। आँखों से दो बूँद आँसू के ढुलक पड़े। रमेश धीरे-धीरे सिसकियाँ भरने लगा ......।

घर आकर रमेश चारपाई पर पड़ रहा। उसे नींद नहीं आई। रात भर सोचता रहा—क्या प्रेम ने ठीक कहा था ? क्या रेखा उसकी नहीं है ? क्या रेखा उसकी नहीं हो सकती ? उसने रेखा के साथ रुखाई क्यों की ? रेखा के साथ, निर्दोष रेखा के साथ यह ज़्यादती हुई। बेचारी कितनी भोली है ? लेकिन वह मेरी नहीं हो सकती ! क्यों ? कैसे ? वह सोचता रहा......!

५

अपनों से दूर

सवेरे ही फ़ोन आया। प्रेम ने समझ लिया कि मि० आलम ने ही रिंग किया होगा। फ़ोन हाँथ में लिया और बातचीत शुरू हुई—

"Congratulations मि० प्रेम, समझौता होने की पूरी उम्मीद है। साहब ने सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दिया। अभी ८-३० बजे ठीकेदार को बँगले पर बुलाया है। आ जाइये तो बातचीत हो जाय।"

"ओह, Thank you मि० आलम। मैं ठीक वख़्त पर हाज़िर हो जाऊँगा।" प्रेम के चेहरे पर मुस्कराहट की एक रेखा दौड़ गई। "मैं शुल्का जी को भी साथ लेता आऊँ—अच्छा रहेगा?" प्रेम ने पूछा।

"ज़रूर, ज़रूर, पंडित जी को ज़रूर साथ लाइये, मैं उन्हें रिंग कर दूँ?"

"नहीं, मैं उनसे कह देता हूँ, आप क्यों तकलीफ़ करेंगे?"

"आलराइट, इन्तज़ार करूँगा।"

"आलराइट, Thank you."

प्रेम बहुत ख़ुश था। युनियन की जीत हो गई। जल्दी से उसने शुक्ला जी को ख़बर दी और सवा आठ बजे तैय्यार रहने के लिये कह दिया।

चाय के समय पापा को भी उसने हँस-हँस कर सारी बातें सुनाईं। मि० वर्मा प्रेम की बातों को सुनकर मज़ा ले रहे थे। यों तो वे प्रेम के कामों से ख़ुश नहीं रहते थे, लेकिन कई बार मना करने भी जब प्रेम न माना तो उन्होंने उस विषय की चर्चा ही छोड़ दी। इसमें कोई शक नहीं कि प्रेम के विषय में उनकी बड़ी-बड़ी उम्मीदें धूल हुई जा रही थीं, लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा हस्तक्षेप करने के लिये वे तैय्यार नहीं थे। उनका ख़्याल था कि आदमी ठोकरें खाकर ही सीखता है। प्रेम बीस से ऊपर का हो गया है। अपना बुरा-भला सोच सकता है। बार-बार हर चीज़ में दख़ल देना ठीक नहीं। लड़के इससे और भी बे कहे हो जाते हैं। हँस कर उन्होंने कहा, "अच्छा, तो युनियन की जीत हो गई? इसीलिये इतने ख़ुश हो रहे हो तुम? तुम्हें क्या मिलेगा अब?"

"पापा, आप भी कैसी बातें करते हैं! युनियन की जीत मेरी जीत है, मज़दूरों की जीत है। मैं उनमें काम करता हूँ, उनका संगठन करता हूँ, उनकी लड़ाई लड़ता हूँ। उनकी कामियाबी में अपनी कामयाबी समझता हूँ। जिस लड़ाई की वजह से हमारे सौ से ज़्यादा कुली जेल में चले गये, उस लड़ाई में अगर जीत हो गई तो इससे बढ़ कर ख़ुशी मेरे लिये और क्या हो सकती है! मैं अभी शुक्ला जी को लेकर मि० आलम के पास जा रहा हूँ। ठीकेदार से बातें करनी हैं और समझौते की शर्तों पर दस्तख़त करना है।" प्रेम ने बड़े गर्व से कहा।

मि० वर्मा समझ गये प्रेम ख़ुश है और चाहता है कि उसकी पीठ थपथपाई जाय। लड़का ही तो है! बीस-इक्कीस बरस की उम्र ही क्या होती है? उन्होंने शाबासी देते हुये कहा, "वाह, तो मेरा प्रेम लीडर हो गया! क्यों प्रेम, तू मि० आलम के पास कुलियों का नेता बन कर जायेगा? बहुत अच्छा!"

चाय ख़त्म हुई और प्रेम ने अपनी साइकिल सँभाली। रास्ते में वह कुलियों की बस्ती में उतर गया। नज़ीर मियाँ ही सामने पड़ गये। प्रेम ने सारी बात जल्दी ही ख़त्म की और सहेज दिया कि, "रज्जन, बशीर,

रम्मू वग़ैरह जितने लोग भी मिलें सबको युनियन के दफ़्तर में बुला लेना। ठीक साढ़े नौ बजे आ जाऊँगा।'' नज़ीर ख़ुश-ख़ुश लम्बे डग भरते हुये बस्ती के भीतर चला गया। शुक्ला जी के बँगले पर प्रेम पहुँचा तो वे तैयार मिले।

"बधाई, कामरेड!''शुक्लाजीने आगे बढ़कर कहा। लीजिये, अब आपकी जीत हो गई। कहा था न मैंने, कुलियों की जीत अवश्य होगी! मि० आलम ने देखा कि कॉंग्रेस भी हस्तक्षेप करने वाली है तो सिटपिटा गये। कॉंग्रेस भी हड़ताल में शामिल हो जाती तो मि० आलम को पता चल जाता।''

"हाँ, शुक्ला जी, इसमें क्या शक? कॉंग्रेस जिसकी पीठ पर हाँथ रख दे वही मज़बूत पड़ जाय। और फिर युनियन कॉंग्रेस कोई दो चीज़ें तो हैं नहीं। मि० आलम जानते थे एक न एक दिन कॉंग्रेस ज़रूर अपना हाथ हड़ताल में लगायेगी। भला यह कैसे हो सकता था कि हमारे कुली भूखों मरें और कांग्रेस चुपचाप यह सब देखती रहे!'' प्रेम ने आभार मानते हुये कहा।

"और क्या! मि० आलम सिटिर-पिटिर करते तो मैं भी उन्हें बता देता कि हमारे शहर में कांग्रेस जैसी कोई चीज़ है।''

"अच्छा चलिये, शुक्ला जी, चला जाय, मि० आलम इन्तज़ार करते होंगे।'' प्रेम ने जल्दी करने के लिये कहा। दोनों कार में बैठ गये।

मि० आलम ठीकेदार को समझा रहे थे,"भाई मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। साहब ख़ुद समझौता चाहते हैं तो मैं क्या करूँ। उनके हुक्म के ख़िलाफ़ मैं कैसे जा सकता हूँ? मैं प्रेम या शुक्ला जी के दबाव में आकर आपको मज़बूर नहीं कर रहा हूँ। पबलिक और व्यापारियों ने साहब पर बहुत ज़ोर दिया कि किसी तरह हड़ताल ख़त्म की जाय। कुली इतने मज़बूत निकले कि सौ से ज़्यादा आदमियों के जेल जाने पर भी हिम्मत न हारी। आप ही बताइये न, मैं क्या करूँ।''

"लेकिन साहब, यह तो मेरी प्रेस्टिज का सवाल है। मैं रुपयों की परवाह नहीं करता। युनियन को रिकागनाइज़ करने के माने ही होंगे हमेशा के लिये अपने हाँथ-पाँव को बाँध लेना। इससे ये कुली बहुत मज़बूत पड़ जाँयेंगे। मेरा रोब इनके ऊपर नहीं रहेगा तो ये काम कैसे करेंगे? आप सब कुछ करिये लेकिन रिकागनिशन वाली बात के लिये मजबूर मत कीजिये।"

"ठीकेदार साहब! मुझे अफ़सोस है कि आप मेरी बात नहीं सुनते। कल मि० प्रेम और शुक्ला जी आये थे! उन्होंने साफ़ कहा कि अगर युनियन रिकागनाइज़ न की जायेगी तो वे समझौता नहीं करेंगे। आप जानते हैं अगर कांग्रेस भी हड़ताल को सपोर्ट करने लगी तब क्या होगा? मैंने तो साहब से कहा कि इस सवाल को फ़िलहाल टाल दिया जाय, लेकिन वे भी कहते हैं, 'इसमें ठीकेदार का क्या बिगड़ता है? युनियन को ज़रूर रिकागनाइज़ किया जाय।' मैं मजबूर हूँ ठीकेदार साहब, आपको यह बात मंजूर करनी पड़ेगी।" मि० आलम ने दृढ़ता से कहा, "देखिये, मैंने मि० प्रेम को ख़बर दे दी है, वे अभी आते होंगे। मैं चाहता हूँ कि उन लोगों के सामने बेकार झिक-झिक न हो। जो शर्तें उनकी हैं उन्हें आप जानते हैं। इसलिये आप समझौता करने के लिये तैय्यार रहिये। वरना मैं नहीं जानता!"

"नहीं हुज़ूर, आपका जो हुक्म हो मेरे सर आँखों पर। आपकी बातें भला मैं टाल सकता हूँ?"

शुक्ला जी की कार अन्दर आ गई। दोनों बरामदे में पहुँचे ही थे कि मि० आलम ने आवाज़ दी—'Come in. आइये, आइये जनाब, आप लोगों के लिये हम इन्तज़ार ही कर रहे थे।" ठीकेदार साहब ने बढ़कर कामरेड प्रेम और शुक्ला जी से हाँथ मिलाया। सभी बैठे तो बातचीत शुरू हुई।

"पंडित जी, ठीकेदार साहब से बातचीत हो रही थी। इन्होंने सब बातें मंज़ूर करलीं हैं। 'रिकागनिशन' वाली बात पर मामला अटका

हुआ है। मैंने साहब से बहुत कहा कि इसके लिये ठीकेदार साहब को मजबूर करें लेकिन वे तैय्यार नहीं हैं। उनका कहना है यह ठीकेदार साहब की मर्ज़ी पर है। ये चाहें तो युनियन को 'रिकागनाइज़' कर लें। साहब इसमें कुछ भी करने के लिये तैय्यार नहीं हैं।" ठीकेदार आँखें फाड़-फाड़ कर मि० आलम की ओर देख रहा था। मि० आलम की बातें उसकी समझ में नहीं आई। अभी तो मि० आलम कुछ और ही कह रहे थे। ठीकेदार ज़रा सभँल कर बैठ गया।

"लेकिन असल सवाल तो यही है। अगर यह बात तय नहीं होती तो फिर समझौता हो ही कैसे सकता है ?" शुक्ला जी ने कहा।

"मि० आलम, कल मैं आपसे कह गया था और आज भी ठीकेदार साहब के सामने मैं यही कहना चाहता हूँ कि अगर युनियन 'रिकागनाइज़' नहीं की जायेगी तो समझौता नहीं हो सकता, चाहे हमारे कुली जनम भर जेल में सड़ा करें और उनके औरत बच्चे एक-एक दाने के लिये तड़प-तड़प कर मर जाँय।" प्रेम आवेश से काँप रहा था। मि० आलम की बातों से उसके बदन में आग लग गई थी। ठीकेदार सहम गया। मि० आलम भी सँभाल कर बोले, "ठीकेदार साहब, आप ही मान जाइये, आप जानते हैं साहब समझौता जल्दी कराना चाहते हैं। अगर आप इस बात को मान लें तो अभी समझौता हो जाय। साहब आप से बहुत .खुश हो जायेंगे।"

"जी हुज़ूर, मैं तो तैय्यार हूँ," घबरा कर ठीकेदार ने कह दिया।

"हमारे कुली और दूसरे साथी कब छूटेंगे ?" प्रेम ने पूछा।

"शाम को, चार बजे तक।" मि० आलम ने विश्वास दिलाते हुये कहा।

प्रेम ने संतोष की सांस ली। शुल्का जी मुस्करा उठे। समझौते की शर्तों पर चारों ने दस्तख़त किये। धन्यवाद देते हुये प्रेम ने ठीकेदार साहब का विशेष ध्यान रखा। मि० आलम बरामदे तक पहुँचाने आये। समझौते के काग़ज़ को देखते हुये प्रेम मोटर में आ बैठा। शुक्ला जी भी

आगये तो मोटर चल दी। ठीकेदार मुंह लटकाये हुये ताँगे में आ बैठा और बँगले के बाहर हो गया!

समझौते की ख़बर बिजली की तरह बस्ती भर में पहुँच गई। नज़ीर ने रज्जन से जब कहा, "चौधरी, ख़ुश ख़बरी सुनो, कामरेड ने कहा है समझौता हो जायेगा। कोतवाल साहब के पास बात करने गये हैं, अभी आते होंगे।" तो रज्जन की आँखों में ख़ुशी के आँसू आ गये। दोनों हाथ उठकर भर्राये हुये गले से कहा, "भगवान कामरेड का भला करे।" बुढ़िया ने कहा, "और क्या, मेरा लाल बड़ा दिलेर है, डटा रहा, लड़ाई जीत के ही माना; सूरमा है सूरमा, आवे तो उसका माथा चूम लूं।" सोना कुछ न कह सकी, बस रम्मू की ओर देखती रही मानों उसके शांत ओठ और सूखी आंखें रम्मू से कह रही हों, "घबराना, जरा-जरा-सी बात पर तुनुक मिजाजी करना और बड़े-बड़ों को भी मद के नशे में न सेटना आसान है, लेकिन अपनी आन के लिये सजा भुगतना, गली-गली मारे-मारे फिरना और अपनी ऐसी करवा के ही छोड़ना मर्दों का काम है। देखा, जीत हुई कि नहीं, हमारे प्रेम बाबू झूठ थोड़े ही कह रहे थे। सब्र से काम ले तो इनसान क्या नहीं कर सकता!" बस्ती के सभी लोग ख़ुश थे। थोड़ी देर में लोग युनियन के दफ़्तर की ओर चलने लगे।

यों तो रोज़ ही युनियन के दफ़्र में कुली इकट्ठे होते थे और कामरेड प्रेम की बातें सुनते थे, लेकिन आज युनियन में कुछ नयापन मालूम पड़ रहा था। मानो युनियन की दीवारें कह रही थीं, "देखो, जीत हुई कि नहीं?" ऊपर झंडा लहरा रहा था, हँसिया हथौड़े वाला, मज़दूरों का झण्डा। वह यों तो रोज़ ही लहराया करता था, लेकिन आज उसके लहराने में एक अजब मस्ती थी, मानो वह गर्व से कह रहा हो, "जो मेरे साये में आए, जिसको मेरी हवा लग जाये, उसकी जीत निश्चय है।" रज्जन ने नज़ीर से कहा, "देखो बड़े मियाँ, हमारा झण्डा कितना अच्छा है, ख़ूब उड़ रहा है!" नज़ीर ने ज़रा तनकर कहा, "और क्या!

हमारा झंडा है, मज़दूरों का !" रम्मू पान खाये अपने संगी-साथियों के साथ झूमता आया। बोला, "देखो, जीत हुई की नहीं। अरे हम लोग कैसे डटे रहे यह तारीफ़ की बात है। लेकिन यार कमाल है! श्यामा की बहू ने सुना है तीन रोज़ लगातार फ़ाका किया लेकिन किसी से कहा तक नहीं। भैया, इन्हीं औरतों के आँसू से भगवान पिघल गये।" रम्मू गंभीर बनने की कोशिश कर रहा था। बशीर बोला, "ख़ुदा क़सम, सच कहता हूँ यार, मेरा तो जी ऊब रहा था। बैठे-बैठे दिन नहीं कटते थे। फलास भी ख़राब मालूम पड़ने लगा था। उससे भी जी उचट गया था। सोचा करता था कब ख़त्म होगी यह हड़ताल। प्रेम कामरेड को देखता तो जी में ढाढ़स होता, लेकिन जीत की उम्मीद कम थी।"

मोटर का हार्न सुनते ही सब लोग खड़े हो गये। समझौते का काग़ज़ लिये प्रेम उतरा। उसके पीछे शुक्ला जी बाहर आये। कुलियों ने नारा दिया, "इनक़लाब-ज़िन्दाबाद! कुली युनियन—ज़िन्दाबाद! कामरेड प्रेम, ज़िन्दाबाद!" प्रेम खड़ा हो गया। उसने घूंसे की सलामी दी। उभरा हुआ सीना, ऊँचा मस्तक, गर्व से फूला प्रेम आज जँच रहा था। शुक्ला जी को आगे कर प्रेम युनियन के दफ़्र में गया। बाहर सभी कुली अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। कुलियों के नेताओं में बातचीत हुई। नज़ीर, कल्लन, रज्बन सभी ने समझौते की शर्तों को मंज़ूर किया। पाँच मिनट में ही यह काम हो गया। बाहर निकल कर प्रेम ने एलान किया—"समझौता हो गया। युनियन ने समझौते की शर्तों को मंज़ूर कर लिया।" लोग समझौते की शर्तों को जानने के लिए उतावले थे। प्रेम ने कहा, "हम अपनी सभा अभी करेंगे। आज की सभा के सभापति शुक्ला जी होंगे।" कुलियों ने कहा, "ज़रूर, ज़रूर।"

सभा की कार्रवाई शुरू हुई। कामरेड प्रेम ने समझौते की शर्तों को सुनाया "१. युनियन रिकागनाइज़ करली जाय २. सभी कुली और दूसरे साथी शाम तक जेल से छोड़ दिये जायँ ३. हड़ताल की वजह से किसी कुली को किसी तरह की भी सज़ा न दी जाय। ४. ठीकेदार

बिल्ला उसी को दे जिसे युनियन कहे ५. बेगार बिलकुल न ली जाय और कुलियों के साथ अच्छा व्यवहार हो ६. कुली एक आना रोज़ महसूल टीकेदार को दें।" क्या आप लोगों को समझौते की ये शर्तें मंज़ूर हैं?" प्रेम ने ज़ोर से पूछा।

"हाँ, हाँ, मंज़ूर हैं।" सभी तरफ़ से आवाज़ें आईं।

"भाइयो," प्रेम ने कहना शुरू किया, "अपनी कुर्बानी और बहादुरी की वजह से आज चालीस दिनों की लड़ाई के बाद आपकी जीत हो गई। मुझे आज बहुत ख़ुशी हो रही है। हमारे बीच में हमारे शहर कांग्रेस कमेटी के मंत्री शुक्ला जी मौजूद हैं। हमारी इस जीत में शुक्लाजी का बहुत बड़ा हाँथ है। मि० आलम तो अब भी इधर-उधर की बातें कर रहे थे। शुक्ला जी ने ज़ोर न मारा होता तो मि० आलम अभी कुछ और दिन इस मामले को लटकाये रहते। हम अपने शुक्ला जी को धन्यवाद देते हैं और वादा करते हैं कि युनियन के लोग उनके कहने पर काँग्रेस के हर काम में पूरा-पूरा हिस्सा लेते रहेंगे। आज शाम को हमारी बड़ी सभा होगी। उसमें हम जेल से रिहा होने वाले अपने सभी साथियों का स्वागत करेंगे। कल से आप लोग अपने-अपने काम पर जाइयेगा। इस समय मैं कुछ और नहीं कहना चाहता। शाम की सभा में जी खोलकर अपने मन की बातें कहूँगा।"

"भाइयो, बधाई" शुक्ला जी ने कहा, "शाम को मैं आप के सामने आपके कर्तव्यों के बारे में बताऊँगा। जब सभी साथी छूटकर आ जायेंगे तो सब के सामने मैं भी अपनी बातें रखूंगा। आपकी जीत से हम सब को बड़ी ख़ुशी हुई। शहर कांग्रेस कमेटी की ओर से मैं आपको बधाई देता हूँ। अब सभा ख़त्म होती है।"

जय के नारों के बीच सभा समाप्त हो गई।

जेल में कामरेड शरीफ़ तक समझौते की बात पहुँच गई थी। लेकिन जब तक पूरी तरह तसदीक़ न हो जाये वह कुलियों के सामने सारी बातें खोलकर रख नहीं सकते थे। फिर भी उन्होंने इतना तो बता ही दिया कि,

'समझौते की पूरी उम्मीद है, शाम तक पूरी ख़बर मिल जायेगी।' कुलियों की हालत अजब थी। कुछ तो यह जानकर ख़ुश हुये कि उनकी जीत होने की उम्मीद है, लेकिन ज़्यादातर लोग चुप ही रहे। "रोज़ ही तो ऐसी ख़बरें आती रहती हैं। जीत हो जाये तो जानें।" कामरेड शरीफ़ दिन भर कुलियों से बातें करते रहे, "बाहर निकलकर युनियन को ख़ूब मज़बूत कर लेना है। शहर के सभी मज़दूरों के सामने हमारी युनियन एक मिसाल की तरह होनी चाहिये। देखा, क़ुर्बानी और इत्तहाद का नतीजा क्या होता है? मैं तो कहता हूँ मज़दूर अपने एके से सब कुछ कर सकते हैं। क़ुर्बानियों से घबराने वाला भी क्या इनसान होता है? बिना क़ुर्बानी के दुनिया में कुछ नहीं हो सकता। लेकिन अकेली क़ुर्बानी ही काफ़ी नहीं है। समझदारी और इत्तहाद के साथ क़ुर्बानी की जाय तो जीत ज़रूर होगी। तुम लोगों ने अपने इत्तहाद, क़ुर्बानी और दिलेरी का सबूत पेश किया है। इसलिये तुम्हारी जीत होना ज़रूरी है। मुझे तो पूरा यक़ीन है कि हमारी हड़ताल कामयाब हो गयी, बस ख़बर आने की देर है।"

प्रेम को अब फ़िक्र थी कि सारे कुली जल्दी बाहर आयें। उसने जेल में कई बार फ़ोन किया. "कोई आर्डर पहुँचा?" हमेशा 'नहीं' में जवाब मिलता। शामको चार बज गये। प्रेम बेताब हो रहा था, लेकिन वह कर ही क्या सकता था। कई बार शुल्का जी को फ़ोन किया। शुक्ला जी भी परेशान थे। मामला क्या है समझ में नहीं आता। साढ़े चार बजे फ़ोन आया तो प्रेम ने ही रिसीव् किया। मि० आलम बोल रहे थे। "पाँच बजे के बाद दस-दस की टोली में सभी कुली छोड़ दिये जायेंगे। मि० शरीफ़, मि० गुप्ता और मि० सिनहा अभी फ़िलहाल नहीं छोड़े जायेंगे। इनके मामले पर ग़ौर हो रहा है। आप से कुछ काम है। घर ही पर रहियेगा। आधे घण्टे में आ जाऊँगा। ज़रूर रहियेगा।" प्रेम घबराया। यह क्या बात है? हमारे सभी कामरेड रोक लिये गये! मुझ से मिलने आ रहा है। इतनी मेहरबानी मुझ पर! दिल में शक हो गया, कुछ दाल में काला है।

"लेकिन मैं तो अभी शुक्ला जी के पास जा रहा हूँ। वहाँ से कुलियों की बस्ती में और फिर जेल जाऊँगा। शुक्ला जी को ख़बर दे चुका हूँ। माफ़ कीजियेगा।" प्रेम ने जवाब दिया और फ़ोन रख दिया। थोड़ी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा प्रेम ग़ौर करता रहा। कुछ समझ में नहीं आया— सोचा चलें शुल्का जी से ही सलाह ले लें।

शुल्का जी ख़ुद उलझन में थे। लेकिन उनका कहना था कि, "आलम ऐसा नहीं करेगा। मुझे तो यक़ीन नहीं होता।"

"शुक्ला जी, मुझे तो पूरा शक है। उस आदमी के लिये दुनिया में कोई भी काम मुश्किल नहीं है। मेरी समझ में ज़रूर कुछ होने वाला है।"

"तो फिर तिड़ी हो जाओ। हर्ज ही क्या है?"

"हो तो सकता हूँ तिड़ी, लेकिन पशोपेश में पड़ा हूँ, क्या करूँ। इस हालत में जब कि वे कामरेड जेल ही में रह गये, युनियन का काम कैसे चलेगा? बहरहाल, ज़रा मैं अपने कामरेडों से मिल लूँ। निकल गया तो ये बच्चू मुझे क्या पायेंगे? अच्छा चलूँ।"

"देखो, होशियारी से रहना, जैसा तय करना ख़बर भेज देना। मैं हर तरह की मदद के लिये तैय्यार हूँ।"

साइकिल लेकर प्रेम बढ़ा ही था कि मि० आलम की मोटर अन्दर आ गई। प्रेम को देखकर मि० आलम ने मोटर सामने ही रोक ली। पीछे पुलिस से भरी दो लारियाँ भी थीं। प्रेम सब समझ गया। लेकिन अब सारी कोशिश बेकार थी। चुपचाप साइकिल के सहारे खड़ा हो गया।

"मुझे अफ़सोस है मि० प्रेम मैंने आपको रास्ते में रोक लिया, लेकिन मैं मजबूर था।" मि० आलम ने कहा।

"कोई बात नहीं. कहिये, क्या हुक्म है? कैसे तकलीफ़ की?"

"क्या बताऊँ मि० प्रेम, यह सरकारी नौकरी भी बड़ी ख़राब है। यह जो चाहे हम लोगों से कराले। मजबूर हूँ, वरना आप जैसे शरीफ़

गुरबापरवर आदमी की तो और ही क़द्र होनी चाहिये थी। किसी दूसरे मुल्क में आप जैसे आदमी की पूजा होती।"

"तो क्या वारंट हैं? कौन सी दफ़ा है, १२६!"

"हाँ" मि० आलम ने सर नीचा किये हुये दृढ़ता से कहा।

इतने में शुल्का जी भी आगये। उन्हें अचम्भा कम हुआ, ग़ुस्सा ज़्यादा आया। बोले, "बड़े शर्म की बात है यह मि० आलम। हम लोग जेल जाने से डरते नहीं, लेकिन अगर आप को ऐसा ही करना था तो उसी वक़्त कामरेड प्रेम को फ़ोन कर देते, कोई ये भाग थोड़े ही जाते। कामरेड प्रेम, घबड़ाने की कोई बात नहीं, युनियन का काम चलता रहेगा। मैं अब इस पर विशेष ध्यान दूँगा। आप निश्चिन्त होकर जाइये।"

प्रेम जम कर खड़ा था। उसने कहा "अच्छी बात है, नमस्ते! देखें कब मिलते हैं?"

"जल्दी मिलेंगे, बहुत जल्दी।" शुल्का जी ने आश्वासन देते हुये कहा। "नमस्कार, ले जाइये मिस्टर आलम, कामरेड प्रेम तैय्यार हैं।"

"पापा के पास ख़बर करा दीजियेगा और··"

"और किसी से कुछ कहना है।"

"नहीं और सब ठीक है।" प्रेम की आँखों के सामने लुई की छलछलाई आँखें, सिसकती हुई सोना, घबराया हुआ रमेश और शांत-एकदम शांत-पापा, के चित्र थे। वह चुपके से मि० आलम की कार में जा बैठा। कार चली गई। शुक्ला जी बहुत देर तक चुपचाप वहीं खड़े रह गये। बाद में फ़ोन उठाया और काँपती आवाज़ से बोले, "मि० वर्मा, कामरेड प्रेम गिरफ़्तार हो गये, अभी, मेरे यहाँ, दफ़ा १२६ में। मुझे बहुत अफ़सोस है।"

"अँय! प्रेम पकड़ गया! कोई बात नहीं, बहादुर लड़का है" कह कर मि० वर्मा ने फ़ोन रख दिया। उनकी आँखों के सामने अँधेरा था।

मेरा लकड़ा, प्रेम, मेरा प्रेम जेल गया ! अब क्या होगा ! अब मैं क्या करूँ ! लेकिन मेरा दिल क्यों बैठा जा रहा है ? ओह···अब क्या होगा ! इतना बड़ा मकान सूना हो गया···चाय किसके साथ पियूँगा ! लुई अब क्या करेगी ?······अच्छा, जाने दो, कोई हर्ज नहीं, भले काम में गया है। सभी तो जाते हैं। मेरा प्रेम लीडर था, इसलिये जेल गया—सब ठीक ही हुआ······"

सभा तो छः बजे थी। लेकिन कुली अभी से आने लगे थे। बड़ी ख़ुशी थी। कामरेड प्रेम की बातें सच निकलीं। जीत हो गई। हड़ताल कामियाब हो गई। घर-घर में ख़ुशी थी। बस्ती भर में आज नई जान आ गई थी। सभा में औरतें भी आई थीं। रुपन के साथ ही सोना भी थी। मन में बड़े-बड़े अरमान थे। आज वह अपने कामरेड प्रेम को बोलते हुये सुनेगी ! चौड़ा सीना, ऊँचा माथा, घुँघराले बाल, कितने अच्छे लगते हैं ! घर जाकर रम्मू से कहेगी, "देखा मेरे कामरेड को, अब जाके रहूँ उन्हीं के घर !" बहुत से कुली तो रज्जन और नज़ीर के साथ जेल चले गये थे माला लेकर। छूटने वाले साथियों का स्वागत जो करना था। बाक़ी लोग इधर-उधर घूम-घाम, हँस-बोल रहे थे। रम्मू बशीर की जोड़ी चुहल करने में लगी हुई थी। छोटे-छोटे बच्चे भी आये थे। सोचा कोई मेला है। युनियन का दफ़्तर तो भर गया। फिर तय हुआ बाहर ही इन्तज़ाम किया जाय। सैकड़ों आदमी के लिये जगह चाहिये। दूसरे लोग भी तो आवेंगे।

शुक्ला जी उदास मन मोटर से अकेले उतरे। लोगों ने उनका स्वागत किया। कामरेड को नहीं देखा तो कुछ समझ नहीं पाये। शुक्ला जी तय नहीं कर सके, "कैसे कहूँ ! क्या कहूँ !"

उधर से रिहा होने वाले कुलियों का जलूस भी आ गया। नज़ीर, रज्जन, कल्लन, श्यामा, सभी सीना फुलाये हँसते, गाते चले आ रहे थे।

"मज़दूरों ने मुल्कों-मुल्कों, अब झण्डा लाल उठाया है।
जो भूखा था, सो नंगा था, अब गुस्सा उसको आया है..."

नज़दीक पहुँचे तो भीड़ उमड़ पड़ी। सभी एक दूसरे से गले मिलने लगे, जय हुई। जब कुलियों को मालूम हुआ कि कामरेड शरीफ़, सिन्हा, गुप्ता सभी रोक लिए गए तो चारों तरफ़ उदासी छा गई। प्रेम भी दिखाई नहीं पड़ा तो कानाफूसी शुरू हुई। कहीं वे भी तो नहीं पकड़ लिये गये? शुक्ला जी ने कहा, "भाइयो, आप बैठ जाइए, अब सभा की कार्रवाई शुरू होगी।"

"लेकिन कामरेड प्रेम कहाँ है?" एक आवाज़ आई।

"दूसरे कामरेड क्यों नहीं रिहा हुए!" दूसरी आवाज़ आई।

शुक्ला जी परेशान थे, क्या जवाब देते? रूँधे हुये गले से बोले, "भाइयो, कोई परवाह नहीं। अगर प्रेम बाबू गिरफ़्तार हो गए तो क्या हुआ? युनियन का काम और ज़ोरों से चलेगा अब......।"

"क्या प्रेम कामरेड पकड़ गये?"

चारो तरफ़ सन्नाटा छा गया। फिर कानाफूसी शुरू हुई, फिर आवाज़ आई, "क्यों, कहाँ, कब?" शुक्ला जी को कहना पड़ा, "मेरे बँगले पर आये थे। साथ में यहीं आने की बात थी। उसी वख़्त पुलिस आकर उन्हें ले गई। मुझे दुख है...।"

सभा उखड़ गई। अब सभा क्या होगी! जब प्रेम कामरेड ही नहीं रहे तो बोलेगा कौन! यह क्या हुआ?

सोना, रुपन, रज्जन, नज़ीर, कल्लन, रम्मू, श्यामा, बशीर सभी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रहीं थीं। अब क्या होगा......!

"कुलियों की जीत हो गई। हड़ताल ख़त्म हो गई। सभी कुली छूट गये। प्रेम गिरफ़्तार हो गया। दफ़ा १२६ में—पापा"

तार लुई को मिला। खाना-खाने बैठी थी। पढ़ते ही आँखों के सामने अंधेरा छा गया। मुँह का कौर मुँह में, हाँथ का टुकड़ा हाँथ में, लुई—शाँत स्तब्ध, मूक!

"क्या हुआ बेटी! क्या तार है!" घबराकर पापा ने कहा। लुई ने तार आगे बढ़ा दिया। पापा सन्न हो गये। यह क्या हुआ!

"पापा चलो, अब वापस चलें, सवेरे ही की गाड़ी से, यहाँ अब मन नहीं लगेगा।" लुई ने कहा।

"अच्छा बेटी, जैसा तुम कहो।" पापा अधिक न बोल पाये। लुई की वेदना का उन्हें पता था।

साफ़ आसमान, झिलमिलाते तारे! ठंडी हवा के झोंके! लुई की पीड़ा बढ़ती जा रही थी। "प्रेम जेल में है। अब मैं क्या करूँगी? कौन मुझसे बातें करेगा, कौन मुझे समझायेगा? कौन मुझे प्यार करेगा? मैं पहाड़ में सैर करने आई थी, वह गर्मी और लू में गलियों की ख़ाक छान रहा था। मैं इस होटल में मौज कर रही हूँ. वह जेल की कोठरी में बन्द होगा! ओह, मेरा प्रेम, मेरा साथी, दोस्त, गुरू—प्रेम गिरफ़्तार हो गया!" करवटें बदलते आसमान के तारे गिनते लुई की लम्बी रात बीत गई। सवेरे उसका सिरहाना सारा का सारा भीगा हुआ था, उसके गर्म-गर्म आसुओं से!

"रेखा, प्रेम गिरफ़्तार हो गया।" रमेश ने जल्दी से कहा। रेखा काँप गई।

"तुम्हारे ऊपर तो कोई आफ़त नहीं आयेगी?" घबरा कर रेखा ने पूछा। वह डर गई थी।

"कह नहीं सकता, लेकिन प्रेम तो पकड़ा गया, अब क्या होगा?"

"क्यों पकड़े गए, कुछ पता चला?"

"हाँ, हड़ताल ख़त्म हो गई, समझौते के बाद शाम को पकड़ा गया, शुक्ला जी के बंगले पर।"

"जब समझौता हो गया तो फिर क्यों पकड़े गये?"

"पता नहीं, लेकिन पकड़ा गया यह ख़बर सही है। पापा बता रहे थे।" रेखा की समझ में अब भी नहीं आया कि समझौते के बाद, हड़ताल ख़त्म होने पर प्रेम क्यों पकड़े गये। लेकिन रमेश अपनी धुन में बस यही कहे जा रहा था, "प्रेम पकड़ा गया, प्रेम—मेरा साथी, दोस्त......।"

रेखा ने कहा, "अच्छी बात है, तुम्हारे साथी बहादुर आदमी थे। ग़रीबों की सेवा करते थे। पकड़े गए तो क्या हुआ ! जल्दी ही छूट जायेंगे। इतने परेशान क्यों हो ? ज़रा शांत हो जाओ।"

"हाँ ठीक, घबराने की क्या बात है ! प्रेम बहादुर है।" रमेश का स्नेह उमड़ पड़ा। वह अपने को अब रोक न सका।

कुलियों की बस्ती में दिन भर आनन्द मंगल रहा। इस ख़बर के बाद जैसे बस्ती में जान ही नहीं रह गई। दो-दो, चार-चार के गुट में बैठे लोग इसी बात की चार्चा कर रहे थे। रज्जन के घर पर काफ़ी आदमी जमा थे।

"भैया रज्जन, बात कुछ समझ में नहीं आई।" नज़ीर ने कहा "समझौता हो जाने के बाद क्यों गिरफ़्तारी हुई ? उधर तो सभी कुलियों को रिहा कर दिया इधर कामरेड को पकड़ लिया ? दूसरे कामरेडों को भी नहीं छोड़ा, बात क्या है ?"

"यही तो मैं भी कहता हूँ नज़ीर भाई, शरीफ़ मियाँ, गुप्ता बाबू, सिनहा जी सभी को बन्द रखा। अब हमारे कामरेड को भी ले गये। कोई मुकदमा चलायेंगे। कब तक हमारे ये लड़के जेल में सड़ेंगे ? हाय भगवान !" रज्जन आह भर के रह गया। चारों तरफ़ से करुणा का समुद्र उमड़ा चला आ रहा था। रम्मू कुछ बोलना चाहता था लेकिन आवाज़ नहीं निकली। बशीर आँसू पोछता रह गया, कुछ बोल न सका। सब को यही लग रहा था कि घर का कोई प्राणी हमेशा के लिये अपने से छिन गया, दूर हो गया।

भीतर रुपन बैठी चुपचाप बाहर की बातें सुन रही थी। सोना उसके पास बैठी बैठी पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेद रही थी। दातों से निचले ओंठ को दबाये सोना साँस खींचने के प्रयत्न में चुप बैठी थी। उसका चेहरा लाल हो रहा था।

रजन ने कहा, "भगवान भला करे मेरे लाल का। छूट के आ जाय तो देवता को भोग लगाऊँ, परसाद बाटूँ।" लोग सिहर उठे।

रञ्जन के इन शब्दों में स्नेह से भीगा आशीर्वचन था। रुपन ने आँचल फैलाकर ऊपर ताकते हुये धीमे से कहा, "भगवान मेरे लाल को जल्दी रिहा करा दो!" सोना रुपन की गोद में सिर डाल कर सिसकियाँ भरने लगी।

बहुत रात गये लोग अपने-अपने घरों को रवना हुये।

× × ×

प्रेम को पुलिस जब कोतवाली से लारी में ले चली तो उसका दिल बैठने लगा। प्रेम डरता नहीं था, कुर्बानियों से घबराता नहीं था। लेकिन शहर की दुकानें, चलते हुए राहगीर, सभी जब छूटने लगे तो उसकी उदासी बढ़ने लगी। ऐसा लगा कि ये अपने लोग, ये अपनी इमारतें और सड़कें सब छूटती जा रही हैं। न जानें कब इन्हें फिर देखूंगा। रोज़ तो इन्हें देखता था, लेकिन तब इतनी निकटता और अपनापन महसूस नहीं होता था। आज इनको छोड़ना खल क्यों रहा है? जो सामने रहता है उससे मोह होते हुये भी पता नहीं चलता। वही जब छूटने लगता है तो कलेजा फटता है। प्रेम की भावुकता उभरी आ रही थी।

मोटर में वह चारो तरफ़ सिपाहियों से घिरा हुआ था। दारोग़ा जी धुआँधार सिगरेट पीते जा रहे थे। सिपाही बन्दूक सँभाले चुप-चाप बैठे हुये थे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की भावना की झलक नहीं थी। यह तो उनका रोज़ का पेशा था। सैकड़ों को वे इसी प्रकार जेल भेज चुके थे। उन्हें इस बात की क्या परवाह कि जिस व्यक्ति को गिरफ़्तार करके वे लिये जा रहे हैं वह दोषी है अथवा निर्दोष। क़ानून की बन्दिश, सरकारी हुक्म की पाबन्दी, बस इतना ही वे जानते थे।

सिपाहियों के भी बीबी-बच्चे होते हैं। दारोग़ा जी भी घर कुटुम्ब वाले आदमी हैं। इनको भी स्वजनों से इसी प्रकार अलग होना पड़े तो ये क्या करेंगे! इन्हें कैसा लगेगा! लेकिन इनका तो यह पेशा है। आदत पड़ गई है। रोज़-रोज़ तो यही करते हैं। अगर भावुकता से काम

लें तो नौकरी छोड़कर बैठना पड़े। नौकरी और भावुकता का साथ ही क्या ?

कर्तव्य भावना ! जिसका नमक खाय उसकी ऐसी करना—यह भी तो कर्तव्य ही है। अपने देश और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का सवाल तब उठता है जब कि आदमी जागरूक हो और अपने कर्तव्य को निश्चित करने के पहिले वह अपने समाज से जीवित सम्बन्ध स्थापित कर सके।

रोटी कमाना, बच्चों को पालना, बूढ़ा होकर मर जाना, यह एक परिपाटी है। अपने आस पास रहने वालों के सुख-दुख में संवेदना प्रगट करना, उनकी सेवा करना बिल्कुल दूसरी परिपाटी है। दोनों में चुनाव होता है। किसको कौन चुने यह इस पर निर्भर है कि कौन कितना व्यष्टिवादी है। मानव निरीह और सबसे अलग रहने वाला व्यक्ति होते हुये भी समाज का ही अंग है। समाज की भलाई में ही उस की भलाई है। लेकिन इस बात को समझने के पहिले उसे यह समझना रह जाता है कि वह किस प्रकार जीवित रूप से अपने वातावरण और सामाजिक बंधनों से बँधा हुआ है।

नौकरी, वह भी पुलिस की, इनसान को जानवर बना देती है। उसे दिन-रात मानवी स्वभाव के निकृष्टतम अंश का ही सामना करना पड़ता है। धीरे-धीरे वह भूल सा जाता है कि इनसान में अच्छे गुण भी हो सकते हैं। जाल, फ़रेब, मक्कारी, चोरी, जुआ यही सब उसे मानव स्वभाव के अंग मालूम पड़ने लगते हैं। ऐसे आदमियों को जेल के सिवा और कहाँ रखा जाय ? ठीक तो करते हैं बेचारे पुलिस के लोग ! सरकारी नमक अदा करते हैं और समाज से उन लोगों को अलग कर देते हैं जो समाज के लिये ख़तरनाक हैं, जिनसे समाज का भला नहीं हो सकता !

क्या प्रेम जाल-फरेब करता था ! मक्कार था ! जुआ खेलता था ! चोरी करता था ! इनमें से एक भी दुर्गुण प्रेम के अन्दर नहीं थे। फिर

वह क्यों गिरफ्तार किया गया ? उसने कौन सा जुर्म किया था ? समाज का उसने क्या अनहित किया ? कुलियों की लड़ाई लड़ना, उन बेचारों के दुख-संकट में काम आना भी क्या जुर्म था ? आज के समाज में सेवा की सज़ा जेल है। प्रेम ने यही जुर्म किया था। ठीकेदार से लड़ना, हड़ताल को कामयाबी के साथ चलाना, कुलियों को संगठित करना और युनियन को मज़बूत बनाये रखना—प्रेम ने यही जुर्म किये थे ! इसीलिये वह ख़तरनाक था। जेल ही उसके लिये उपयुक्त जगह थी !

इतना ही नहीं। प्रेम उस दल का भी सदस्य था जो कि ग़ैरकानूनी था। ग़ैरकानूनी ! क़ानून क्या है ? समाज के अन्दर सुव्यवस्था लाने के लिये निश्चित नियम—ऐसे नियम जिनको मानने ही में समाज का कल्याण है। नियम किसने बनाये ? समाज के हितचिन्तकों ने, समाज के ठीकेदारों ने ! इन नियमों का उल्लङ्घन करना अक्षम्य अपराध है। जो इन नियमों का उल्लङ्घन करे वह दण्डनीय है। शासक उसे क्षमा नहीं कर सकते ! यह दल किसानों-मज़दूरों का संगठन करता है। उनमें वर्ग चेतना लाता है। उनको सजग, कर्मठ और लड़ाकू बनाता है। कितना घोर अपराध है यह ! ऐसे दल को 'ग़ैरक़ानूनी' क़रार देना लाज़िमी है।

समाज में सुव्यवस्था लाना किस की ज़िम्मदारी है ? शासकों की ! शासक अपना कर्तव्य कैसे पूरा कर सकते हैं ? इन्हीं नियमों को सख़्ती के साथ काम में लाकर। 'कम्युनिस्ट पार्टी' ग़ैरक़ानूनी बनाई गई तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वह भी कोई ज़िमीदारों, पूंजीपतियों का अखाड़ा है कि जिसे ऊँचे से ऊँचे सरकारी पदाधिकारियों को सम्मान-पत्र देने का सौभाग्य प्राप्त हो ? क़ानून की रक्षा वही कर सकते हैं, क़ानून का पालन वही कर सकते हैं जो पढ़े, लिखे, सम्पन्न हों। गवाँर-मूर्खों को आज़ाद कर दिया जाय तो ये समाज में अराजकता फैला दें और सुव्यवस्था नाम की कोई चीज़ रह ही न जाय। इनके ऊपर कड़ा रुख़ रखना, इन्हें दबाये रखना ज़रूरी है ! इसी में समाज का भला है।

इनकी पार्टी को ग़ैरक़ानूनी रखना, उसके विकास और उन्नति को रोके रखना सर्वथा उचित है, न्याय्य है ! इसीलिये कामरेड प्रेम को गिरफ़्तार किया गया। कामरेड प्रेम उसी पार्टी के सदस्य जो थे !

"लेकिन चलो अच्छा ही हुआ ! अब बाहर वाले बाहर की देखें। हम तो चले अपने साथियों में ! कामरेड शरीफ़, सिनहा, गुप्ता उनको, अभी मालूम नहीं होगा कि मैं भी आ रहा हूँ। वे तो कुलियों की जीत के कारण मंगल मना रहे होंगे। उनसे मिलूँगा तो ख़ूब बातें होंगी। सारा क़िस्सा सुनाऊँगा। हड़ताल के उतार चढ़ाव, काँग्रेस वालों का रुख़, मि० आलम के कारनामें, कुलियों की मानसिक अवस्था, रज्जन, रुपन, सोना सभी के क़िस्से सुनाऊँगा।

लेकिन पापा का क्या होगा ? बड़ा 'शाक' लगा होगा। बेचारे क्या जानते थे कि उनका प्रेम यह भी करेगा ? शायद वे इसके लिये अभी तैय्यार नहीं थे। फिर भी वे समझदार बहुत हैं। मुझे कभी काम करने से रोका नहीं। यों मना तो सभी माता-पिता करते हैं—कौन अपने प्यारे बेटे को गलियों की ख़ाक छानते देखना पसन्द करेगा ? लेकिन पापा ने कभी मेरे रास्ते में रोड़े नहीं अटकाये। धीरे-धीरे पापा इस 'शाक' को भी बर्दाश्त कर लेंगे।

और मेरी लुई का क्या होगा ? इस ख़बर को पाकर मर जायेगी बेचारी ! लेकिन वह बहादुर है। पालिटिक्स कोई खेल थोड़े ही है। लुई यह सब जानती थी। वह तैय्यार भी थी इसके लिये। उसे दुख तो होगा ही, नारी स्वाभाव है ! फिर भी उसे बर्दाश्त करना चाहिये। उसे और जम के काम करना चाहिये अब। मेरी लुई अब और डट कर पार्टी का काम करेगी। मेरी गिरफ़्तारी से उसमें और बल आयेगा, जोश आयेगा। उसकी क्षमता बढ़ जायेगी। चलो अच्छा हुआ। पर उसे अब देखूँगा कैसे ? कब मिलेगी अब वह···"

"मि० प्रेम, चलिये जेल आ गया।" दारोग़ा जी ने मोटर रुकते ही कहा। प्रेम चौंक गया। सामने बड़ा-सा लोहे के सीख़चों वाला

फाटक मुँह बाये खड़ा था। कोने में घाव की तरह एक दरवाज़ा था। लगातार खुलता, बन्द होता रहता था। अन्दर से दरबान झाँक रहा था। दो एक पीले कपड़े वाले लोग भी खड़े होकर देख रहे थे 'यह कौन नया आदमी आया ?' एक दो मिनट देख कर वे अपना काम करने लगे। प्रेम सहम कर नीचे उतरा और तनकर खड़ा हो गया। चारों तरफ़ बन्दूख लिये सिपाही मौजूद थे। दारोग़ा जी आगे बढ़ गये। दरबान से बातचीत की। छोटा दरवाज़ा खुला। प्रेम अन्दर दाख़िल हो गया।

अन्दर पहुँच कर प्रेम को लगा कि वह अपनों से दूर हो रहा है ! लेकिन भीतर भी तो अपने ही आदमी हैं—कामरेड शरीफ़, सिनहा, गुप्ता ! बाहर वालों के लिये मोह, भीतर वालों से जल्दी मिलने की आतुरता, प्रेम का कलेजा धड़क रहा था !

"बाबू जी, चलिये अन्दर।" पक्का बोला !

"चलो" प्रेम ने कहा।

६

नई दुनिया

जेल भी एक दुनिया है, इस दुनिया से अलग। ऊँची-ऊँची दीवारों, फाटकों, जँगलों और सीख़चों के भीतर चलते-फिरते, खाते-पीते, मशीन की तरह काम करते और गालियाँ सुनते, नीले, पीले, सुफ़ेद, धारीदार पैजामा, कोट, जांघिया, कुर्ता पहिने, फटा कम्बल बग़ल में दबाये, बेड़ियाँ और कड़े झनझनाते, आने-जाने व्यस्त रहनेवाले तथा कथित मानवों को देखकर जी पर जो गुज़रती है वह भुक्त-भोगी ही जानते हैं। दीवारों के भीतर दीवार और उसके भीतर भी दीवार! फाटक के अन्दर फाटक और उसके अन्दर एक दो नहीं, कई अरगले! सभी पर ताले! कहीं बड़े और भारी भरकम, कहीं छोटे और मोटे— पर सभी मज़बूत, इतने मज़बूत कि आसानी से तोड़े नहीं जा सकते। सभी अरगलों पर पक्के, नम्बरदारों की ड्यूटी। पीला कपड़ा, लाल टोपी, हाथ में डंडा! अरगले खुले नहीं रखे जा सकते, क़ैदी भाग जायेंगे, इधर-उधर घूमने लगेंगे। इससे जेल का 'कायदा' बिगड़ता है।

डिस्प्लिन! हाँ डिस्प्लिन, इतनी सख़्त की जेलर, सुपरिन्टेन्डेन्ट सभी परेशान। ऊपर से देखो तो मशीन की तरह सब काम हो रहा है।

"बड़ी मुश्किल है; आप लोग यहाँ हैं। काम बहुत है। थोड़े से आदमी, इतने फ़न्ट मरे जा रहे हैं बेचारे कामरेड, उन लोगों की तन्दुरुस्ती ख़राब होती जा रही है। खाना ठीक से नहीं मिलता, रात-रात भर जागते हैं। मुझे बड़ा डर लगता है।"

कमरेड शरीफ़ ठण्डी साँस लेकर चुप रह गए। कुछ बोलना चाहते थे। मगर जैसे उनकी ज़बान खुली नहीं। वे और भी गंभीर और चिन्तित हो गए!

"मज़दूर फ़न्ट का काम ठीक चल रहा है? प्रेस मज़दूरों के झगड़े का क्या हुआ?" कामरेड सिनहा ने पूछा।

"हाँ, चल तो रहा है। मुझे ही प्रेस मज़दूरों का भी काम सौंपा गया था। लेकिन प्रहुँच नहीं पाता था। एक तो मुझे काम का अनुभव कम, दूसरे यह हड़ताल ख़त्म होने ही को नहीं आती थी। मैं तो बिल्कुल परेशान हो गया था। अगर उसी समय प्रेस मज़दूरों की हड़ताल भी हो जाती तो ग़ज़ब हो जाता।"

"अब किस स्टेज पर प्रेस मज़दूर हैं?" कामरेड शरीफ़ ने पूछा।

"समझौते की कोई सूरत नहीं है। मज़दूर हड़ताल करना चाहते हैं। वे आखिर तक लड़ने के लिए तैयार भी हैं। लेकिन उस हड़ताल को चलायेगा कौन? हमारे कामरेड क्या-क्या करेंगे?"

"करना तो है ही सब कुछ।" कामरेड गुप्ता ने कहा।

"सो तो ठीक है, हमारे कामरेड नये होते हुये भी डटने वाले हैं। वे यों ही हाँथ पैर ढीला नहीं करेंगे।"

"इसमें क्या शक!" कामरेड शरीफ़ ने गर्व से कहा, "बोल-शेविक स्पिरिट है, कोई ऐसे-वैसे हैं कि आसानी से हार मान लेंगे। कितना भी काम हो, कैसी भी आफ़त आए, कम्युनिस्ट घबराते नहीं।"

बातें हो ही रहीं थीं कि जमादार चाभी लेकर आया। बन्द होने का समय हो गया था। गिनती हुई और अरगला बन्द हो गया। प्रेम यह सब तमाशा देखता रहा। पहिले तो उसे ख़राब-सा लगा और जी में

आया कह दें, 'बन्द नहीं होंगे', लेकिन जब सभी कामरेड चुप रह गये तो वह भी नहीं बोला।

अरगला बन्द होने पर नम्बरदार ने खाना परसा। यही नियम बना लिया था कामरेडों ने। दफ़्ता से खाना बन कर आ जाता था। शाम को बन्द होने पर नम्बरदार खाना परस देता और सभी कामरेड एक साथ बैठ कर खा लेते थे। खाना परसते हुए नम्बरदार ने कहा, "ये नये बाबू जी हैं क्या ? किस जुर्म में आये हैं ?"

"जुर्म क्या है ? नज़रबन्द हैं, उसी दफ़ा १२६ में। हमारे साथी हैं !" कामरेड शरीफ़ ने कहा।

"भइया, आपलोग अपना घर-बार छोड़ कर सुराज की खातिर जान दे रहे हैं। लेकिन अभी कुछ हुआ नहीं ?" नम्बदार अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला।

"होगा नम्बरदार, स्वराज्य कोई खेल थोड़ी ही है। इसके लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी न" कामरेड सिनहा ने कहा।

"हाँ भइया, भगवान की मर्जी, बहुत दिनों से गाँधी महात्मा झँडा उठा रहे हैं, देखें कब सुराज होता है। हमारी जिन्दगी में सुराज हो जायेगा भइया ?"

"क्यों नहीं, ज़रूर हो जायेगा। अभी तुम बहुत दिन जियोगे। स्वराज्य में अब बहुत कम देर है। सारा देश संगठित हो जाय तो फिर स्वराज्य मिलते कितनी देर लगती है !" कामरेड गुप्ता ने कहा।

बूढ़ा रामदीन कामरेड गुप्ता की बातें अच्छी तरह से समझ नहीं सका। फिर भी ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहा था कि वह सब कुछ समझ गया। सिर हिला कर बोला, "ठीक कहते हो बाबू, भगवान की मरजी होगी तो मैं भी सुराज देख लूँगा।"

कुछ देर रुकने के बाद नये क़ैदी को जानने की उत्सुकता रोक न सकने पर रामदीन फिर बोला, "ये नये बाबू तो अभी बच्चे हैं। घर वाले बेचारे रो-रोकर मर जाते होंगे। शादी हुई है भइया ?"

"नहीं, अभी मेरी उम्र सिर्फ़ २०-२१ साल की है। शादी के अभी बहुत दिन हैं।" प्रेम मुस्कराना चाहता था।

"भइया, मैं भी उस वखत इक्कीस बरस का था। जमाना गुजर गया। उसी वखत गाँधी जी का हल्ला शुरू हुआ था। टौन हाल में विदेसी कपड़े की होली जली थी। मुझे अच्छी तरह याद है। बहुत दिन हो गये।"

"किस जुर्म में आये थे तुम?" प्रेम ने पूछा।

"कुछ नहीं किया था बाबू, पुलिस से दुस्मनाई थी, पकड़ कर मुकदमा चला दिया। डाका, कतल, कई जुरुम लगा दिया।" रामदीन ने ऐसे कहा गोया वह बिल्कुल सच बातें बता रहा हो। प्रेम को विश्वास भी हो गया!

खाना ख़त्म होने के बाद इधर-उधर की गप्पें होती रहीं। बाहर से ख़त, अखबार, किताबें किसी भी चीज़ के आने की इजाज़त नहीं थी। कामरेडों की दुनिया इसलिये और भी छोटी हो गई थी। जेल जीवन के बारे में काफ़ी बातें हुईं। कसरत, दौड़, नहाना, सोना, यही सब काम थे दिन भर।

"लेकिन क्या आप ऊबते नहीं इस 'रुटीन' से?" प्रेम ने कामरेड शरीफ़ से पूछा। कामरेड शरीफ़ मुस्करा पड़े। बोले, "ऊब कर कर ही क्या सकते हैं? रहना तो यहीं है। तब फिर क्यों न चुपचाप दिन बिताया जाय? घबरा कर, ऊब करेंगे ही क्या?"

"क्या Classics भी नहीं आने देते?"

"मैंने बताया न, एकचिट काग़ज़ भी अन्दर नहीं आ सकता। पाव-रोटी के काग़ज़ को भी वापस करना पड़ता है।" कामरेड सिनहा ने कहा।

"तब तो बड़ी मुश्किल है! आख़िर हम लोगों के पढ़ने लिखने से इनका क्या नुक़सान होता है?"

"कामरेड प्रेम, यह जेलख़ाना है। लाजिक, रीज़न और जेल के क़ानूनों से कोई मतलब नहीं। यहाँ हर काम मशीन की तरह होता है।

ऊपर से जो भी ग़लत सही आर्डर आवे उसकी पूरी तामील करना इन जेल वालों का काम है। अपने मन से ये कुछ भी नहीं कर सकते। इनका काम यह देखना नहीं है कि कौन सा आर्डर सही है, कौन ग़लत या बेमौक़ा है। ये तो हुक्म के बन्दे हैं। जो हुक्म होगा उसे आँख बन्द कर मानते जायेंगे।"

"तो कामरेड इसके माने यह हुये कि इनसे किसी भी बात की माँग करना ग़लत है। जब ये कुछ कर ही नहीं सकते तो ये सिर्फ़ हमारे ऊपर निगहबानी करने के लिये रखे गये हैं ? हमारी तकलीफ़ों को दूर करना इनका काम नहीं है फिर !"

"बिल्कुल नहीं, ग़ौर करना दिमाग़ का काम है। दिमाग़ इनके पास बराये नाम है।" कामरेड शरीफ़ ने घृणा और क्षोभ से कहा। कई बार वे जेलर से छोटी मोटी सहूलियतों के लिये कह चुके थे। जेलर ने हमेशा यही कहा था, "मि० शरीफ़, मैं मजबूर हूँ, मुझे ऐसा करने का आर्डर नहीं है।"

बात ही बात में काफ़ी रात बीत गई। सोने की तैय्यारी हुई। कुछ ही देर में सभी कामरेड ख़र्राटे भरने लगे। लेकिन प्रेम को नींद नहीं आई। उसका मन उचटा हुआ था। अपने को अपने साथियों के बीच में पाकर उसे राहत तो मिली थी, लेकिन ऊँचे-ऊँचे सीख़चे, ऊँची-ऊँची दीवारें, लम्बा बहुत बड़ा सा बैरक, दोनों तरफ़ ओटों की कतारें, क़ब्रिस्तान का सा दृष्य था ! कोई रौनक़ नहीं, कोई जीवन नहीं, एक मुर्दनी-सी छाई हुई थी। उस पर यह ख़्याल कि वह ताले के भीतर बन्द है, बाहर निकल नहीं सकता, प्रेम को खाये डाल रहा था।

प्रेम अपने ओटे पर लेटा हुआ करवटें बदल रहा था। उसे नींद नहीं आ रही थी। चाँद की किरणें छनकर अन्दर आ रहीं थीं। गर्मी कम थी। कुछ-कुछ हवा भी चल रही थी। लेकिन प्रेम को उनका एहसास नहीं था। उसके लिए चाँद में कोई आकर्षण नहीं था, तारे बेकार जगमगा रहे थे, ज्योत्सना की शीतलता का उसे अनुभव नहीं हो

रहा था। प्रेम की भावनायें अन्तर्मुखी होकर जैसे कुछ ढूँढ़ रही थीं। बाहर की दुनिया का उसके ऊपर असर नहीं रह गया था।

पापा की याद बार-बार आती। उनको नींद नहीं लगती होगी। मेरी ही तरह बेचारे करवटें बदलते होंगे। मैं तो यहाँ मज़े में हूँ। अपने कामरेडों के बीच में मुझे कष्ट ही क्या है? लेकिन पापा न जाने क्या समझते होंगे। जेल उनके लिए भयानक स्थान है। इसकी याद से ही वह काँप उठते होंगे। मैंने उनको बुढ़ापे में बहुत कष्ट दिया। क्या वे इस 'शाक' से उबर सकेंगे? शरीर पहिले से ही कमज़ोर और जर्जर था। इस घटना के बाद उनका क्या होगा? कैसे कटेंगे दिन उनके?

रमेश को अब मेरी ग़ैर हाज़िरी खलेगी। माना कि वह रेखा के चक्कर में मुझ से मिलना जुलना कम करने लगा था, लेकिन इससे क्या? था तो हमारा अभिन्न मित्र! उसे अब कौन डांटेगा? उस दिन उसको कितना फटकारा! बेचारा कुछ बोला नहीं, चुपचाप सब सुनता गया। उसकी एक यही इच्छा थी कि मैं रेखा से मिल लूँ। मिल लेता तो क्या हर्ज था। बेचारी रेखा वेश्या होते हुये भी आख़िर इन्सान ही तो है। वह आज एक गन्दे वातावरण में पल रही है। लेकिन इससे यह तो ज़रूरी नहीं है कि वह भी उतनी ही घृणित और फ़ाहिशा हो जितनी कि 'रामगंज' की और सभी वेश्यायें। ठीक तो कहा था रमेश ने, 'कूड़े में भी हीरे की कनी मिल सकती है।' मुमकिन है रमेश से उसका नाता सच्चा हो और रेखा सचमुच रमेश के प्रति अनुराग रखती हो। रेखा का इस प्रकार तिरस्कार करके मैंने अच्छा नहीं किया इससे रमेश को बहुत कष्ट पहुँचा होगा।

नारी जाति के प्रति बनावटी उदारता दिखाना और उसपर तरसखाना एक बात है, और उसके प्रति सचमुच सद्भावना रखना, सहानुभूति और सहृदयता दिखाना, बिल्कुल दूसरी बात है। क्या मालूम रेखा कैसी स्त्री है। जिस कुटुम्ब में उसका जन्म हुआ,

जिस संस्कार में वह पली और जिस वातावरण में वह बड़ी होकर वेश्या बनी उसका विश्लेषण किया जाय तो रेखा का दोष बहुत कम निकलेगा। रेखा वेश्या इसलिये नहीं है कि वह वेश्या बनना चाहती थी और इसी अवस्था में आगे भी रहना चाहती है, बल्कि उसकी परिस्थितियों ने मजबूर करके उसे वेश्या बना दिया और अब वह इसी जीवन की आदी हो गई है। एक बार इस जीवन की आदी हो जाने पर इससे सम्बन्धित कोई भी बात उसे बुरी नहीं लगती। उसे सभी बातें स्वाभाविक और नियमानुकूल मालूम पड़ने लगती हैं। समाज की दृष्टि में जिस वस्तु को चरित्र कह कर पुकारा जाता है उसे वह हँस कर उड़ा देना चाहती है। उसके जीवन में आदर्श नहीं है, न आदर्श प्राप्ति के साधनों की ही चिन्ता उसे है। वह वेश्या है, पेट पालना चाहती है, बस! मुझे रेखा को कोसने का कोई अधिकार नहीं है। अगर वह रमेश को फँसाये रख कर उसकी जायदाद हड़प लेना चाहती है और उसकी चढ़ी जवानी को चूस कर उसे खोखला कर देना चाहती है तो इसमें रेखा का कोई दोष नहीं है। वह वेश्या है, वेश्याओं का यही काम है। अगर वह सचमुच रमेश से प्रेम करती है और उसी तक अपने को सीमित रखना चाहती है तो निस्सन्देह रेखा एक असाधारण स्त्री है। उसके सामने श्रद्धा से नतमस्तक होना पड़ेगा। रेखा कैसी है, क्या है, कुछ पता नहीं। हो सकता है रमेश उसकी मोहब्बत में अंधा होकर उसकी प्रशंसा कर रहा हो। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि रेखा ने रमेश को अपना बना लिया हो। बहरहाल, जो कुछ भी हो मुझे रेखा के प्रति अपना रुख़ निश्चित करने के पहिले उसे भली प्रकार जान तो लेना चाहिये था। रमेश की बातें सही थीं। क्या हर्ज होता अगर मैं रेखा से मिल लेता! पर अब क्या हो सकता है! मैं लाचार हूँ।

पापा ने लुई को ज़रूर तार दिया होगा। इस समय वह कितनी परेशान होगी! उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कितनी बार लाल हो गई

होगी। उसे लगता होगा कि मैं बहुत कष्ट में हूँ। मुझे तो कोई कष्ट नहीं है। शायद बाहर वालों को जेल में रहने वालों से अधिक कष्ट होता है। बाहर के लोग अपनी कल्पना के सहारे जेल जीवन का भयानक से भयानक चित्र खींचते हैं और फिर उसी से घबरा कर विह्वल और परेशान होने लगते हैं। लुई मेरे लिये जाने क्या-क्या सोचती होगी! सोना की भी यही दशा होगी। स्त्रियों के स्वभाव में करुणा का कितना गहरा पुट रहता है! सुख-दुख दोनों के अतिरेक में उन्हें रोना आ जाता है। सोना और लुई दो अलग वर्गों की लड़कियाँ हैं। मेरे लिये दोनों के हृदय में गहरी संवेदना है। एक मुझसे स्नेह करती है, दूसरी मुझ पर श्रद्धा रखती है। दोनों मेरे अन्दर आत्मीयता का अनुभव करती हैं। मैंने इनके लिये क्या किया? मैंने इनके साथ क्या उपकार किया? सचमुच स्त्रियों का हृदय उस समुद्र की तरह होता है जिसमें भावुकता की लहरियाँ हमेशा हिलोरें लेती रहती हैं। झंझा के झकोरों से जब ये लहरियाँ उद्वेलित होती हैं तो कूलों से टक्कर लेती हैं। कोहराम मच जाता है। निश्वास और अश्रुपात इसी के चिह्न हैं। सोना, मेरी सोना, रम्मू तुम्हारी क़ीमत नहीं जानता। उसे क्या मालूम कि तुम्हारे उस छोटे से कोमल शरीर में एक जगह पर दिल भी है, वह दिल जिसमें उदारता, स्नेह, करुणा सभी आश्रय पा रहे हैं! सच जानो, तुम्हारी ही प्रतिरूप लुई भी इस समय उत्पीड़न से विह्वल हो आसमान के तारे गिन रही होगी। उसके गर्म-गर्म आँसुओं की क़ीमत मैं जानता हूँ सोना! तुम परेशान मत हो, लुई को भी शांत रहना चाहिये। मैं जल्दी तुम लोगों से आकर मिलूँगा·····

"एक··दो··तीन··चार और हम पाँच, ताला, जँगला, लालटेन सब ठीक है हुज़ूर बारिक नम्बर तीन!"

प्रेम चौंक कर उठ बैठा। यह क्या? इतनी रात गये यह कौन चीखा? प्रेम ने देखा नम्बरदार लालटेन हाँथ में लिये घूम-घूम कर गिनती कररहा है। बाहर कुछ बूटों की आवाज़ आ रही है। कुछ आदमी

तेज़ क़दम बढ़ाये लालटेन के सहारे बैरकों के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे हैं। जिस बैरक के पास वे पहुँचते हैं वहीं 'एक···दो···तीन' की आवाज़ आने लगती है। प्रेम समझ न सका यह सब क्या तमाशा है।

कुछ देर बाद चक्कर काटने वाले लोग चले गये। नम्बरदार भी टहलता हुआ इधर आया। प्रेम को अपने ओटे पर बैठा हुआ देखा तो बोला, "नींद नहीं आती बाबू जी ? ऐसा होता है, शुरू-शुरू का मामला है। घर की याद आ रही है ?"

"हाँ, नम्बरदार कुछ ऐसा ही है" कह कर प्रेम फिर लेट गया। नम्बरदार थोड़ी देर तक बैरक में चक्कर लगाता रहा। फिर लालटेन एक लटकते हुये तार में लगा कर वह अपने ओटे पर बैठ गया। धीरे-धीरे वह ऊँघने लगा।

प्रेम अब सोने के प्रयत्न में लग गया। दिन भर की थकान और परेशानी से उसका शरीर शिथिल हो रहा था। कुछ ही समय बाद उसे भी नींद आ गई। नींद में जानें क्या-क्या सपने उसने देखे। लुई, पापा, सोना, रञ्जन, नज़ीर, मि० आलम, सभी बारी-बारी से सामने आये। सबेरे नींद खुली तो दिन काफ़ी चढ़ आया था। सभी साथी चाय की तैयारी में लगे हुये थे।

प्रेम भी फ़ारिग होकर आ जमा। उसे इस समय पापा की याद आई। चुप हो चाय पीने लगा। कामरेड शरीफ़ समझ गये प्रेम को घर वालों की याद आती होगी। बोले, "कहो किसकी याद आ रही है, नींद तो मजे में आई रात ?"

"नहीं कामरेड, बहुत देर तक जागता रह गया। ज़रा आँख झँपने लगी तो नम्बरदार चीख़ पड़ा। मैं समझ न सका इतनी रात गये इसको क्या हो गया। यह नम्बरदार क्या रोज़ रात को ऐसे ही शोर करता है ?"

"और क्या ? रात को जब कोई अफ़्सर राउण्ड लगाने आता है तब नम्बरदार ज़ोर से गिन कर अपने क़ैदियों की तायदाद बताता है। क़ायदे से तो उसे हर बीस मिनट पर ऐसा करना चाहिये, लेकिन आमतौर से राउण्ड के समय ही नम्बरदार गिनती करते हैं।"

"इस तरह गिनती करने का मतलब क्या है ?"

"कुछ नहीं, बस यह कि सभी क़ैदी मौजूद हैं और सभी सामान बदस्तूर ठीक हैं। नम्बरदार इसी बात की इत्तला देता है।"

"इससे सोने में तो बड़ी गड़बड़ी पड़ती होगी ?"

"हाँ, लेकिन किया क्या जा सकता है ?"

"कामरेड आप एक बात और बताइये। रात को अगर कोई बीमार पड़े। तब क्या होगा ? क्या कोई डाक्टर देखने आयेगा।"

"क़ायदे से फ़ौरन ही डाक्टर को आ जाना चाहिये। लेकिन ऐसा होता बहुत कम है। पहिले तो अस्पताल तक ख़बर ही पहुँचना मुश्किल है। किसी तरह नम्बरदारों की मेहरबानी से डाक्टर तक ख़बर भी पहुँच गई तो वह बैरक के बाहर से ही नब्ज़ देखेगा। बैरक खोलने के पहिले डाक्टर को बड़े साहब तक ख़बर पहुँचानी पड़ती है। इसके बाद जब बाहर रहने वाले हथियारबन्द सिपाही आ जाते हैं तब अरगला खुलता है। इसमें कई घंटे लग जाते हैं और मरीज़ को बड़ी तकलीफ़ होती है।"

"वैसे डाक्टर तो काफ़ी तजर्बेकार होते होंगे। इतने आदमियों की ज़िन्दगी उनके हाँथ में रहती है।"

"तजर्बे की कुछ न पूछो। काफ़ी समझदार और तजर्बे वाले होते हैं ये डाक्टर !"

"क्या मतलब ? मैं समझा नहीं।"

"सुनो तुम्हें एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाऊँ। कामरेड सिनहा के पेट में एक बार बारह बजे रात को बड़े ज़ोर का दर्द उठा। काफ़ी शोर गुल मचाने पर दो घंटे बाद डाक्टर साहब तशरीफ़ लाये। कहने लगे

'हाँथ बढ़ाओ। नब्ज़ देखूंगा।' मुझे बड़ा गुस्सा आया। यह क्या अहमक़पन है ? पेट के दर्द से नब्ज़ से क्या मतलब ? मैंने कहा, 'डाक्टर साहब शायद आप ग़लतफ़हमी में हैं। इनके पेट में दर्द है, बोख़ार नहीं है।' डाक्टर साहब कहने लगे, 'मैं मजबूर हूँ। बाहर से मैं नब्ज़ ही देख सकता हूँ। पेट देखने के लिये बैरक खुलवाना पड़ेगा। बैरक खुलना इस वख़्त बहुत मुश्किल है। मैंने पूछा, 'क्यों?' कहने लगे, 'फाटक से चाभी मँगवानी पड़ेगी, अभी पुलिस के लोग आवेंगे तब कहीं जाके आपका अरगला खुल सकेगा।' मैं झुझँला गया। मैंने कहा, 'डाक्टर साहब, फिर आप साफ़-साफ़ यह कहिये कि आप पेट की दर्द से तड़पते हुये मरीज़ की ज़िन्दगी के साथ मज़ाक करने आये हैं। रहने दीजिये, कोई ज़रूरत नहीं है आपकी। हम लोग यों ही रात काट लेंगे, सवेरे देखा जायगा।' डाक्टर भी झल्लाकर चला गया। रात भर कामरेड सिनहा तड़पा किये लेकिन हम लोग शोर-गुल मचाने पर भी डाक्टर को बैरक के अन्दर नहीं बुला सके। सवेरे आठ बजे डाक्टर आया तब इनको दवा मिल सकी।"

"यह इन्तज़ाम बहुत अच्छा है! कितने क़ैदी यों ही तड़पकर मर जाते होंगे जेल में ? डाक्टरों को यह शोभा नहीं देता।"

"कामरेड प्रेम यह जेल खाना है। यहाँ, इन्सान की तरह चलने-फिरने वाले जिन आदमियों को आप देख रहे हैं, ये अपने दिल को फाटक पर ही रख कर अन्दर आते हैं। दिमाग़ के बारे में मैं आप को बता ही चुका हूँ।"

प्रेम चुप रह गया। वह जेल के अधिकारियों के बारे में जानने के लिये बहुत उत्सुक था। इस नई दुनिया पर शासन करने वाले लोग किस मिट्टी के बने हैं, इसे जानने की उसे इच्छा थी। लेकिन पहली ही बात सुनकर वह ऊब गया। जब डाक्टर का यह हाल तो और लोग कैसे होंगे इसका अन्दाज़ आसानी से लगाया जा सकता था। फिर राजनैतिक नज़रबन्दों के साथ यह बर्ताव

तो वेचारे मामूली क़ैदी जो कि चोरी-डाका वगैरह के .जुर्म में सज़ा काट रहे हैं उनकी क्या दशा होगी !

+ + +

पहाड़ से वापस आकर लुई सीधे पार्टी कामरेडों के पास पहुँची। वहां उसे अपना प्रोग्राम तय करनेमें ज़रा भी दिक़्क़त नहीं हुई। विद्यार्थी मोर्चे पर वह अब भी काम करेगी। इसके लिये उसे अपनी पढ़ाई जारी रखनी पड़ेगी। लेकिन अब उसको अधिक समय मज़दूर औरतों में देना होगा। यों तो यहाँ मज़दूरों की तायदाद बहुत ज़्यादा नहीं है। मज़दूर रहते भी छिट-पुट इधर-उधर हैं। फिर भी कुलियों की एक ऐसी बस्ती है, जिसमें काफ़ी लोग रहते हैं। तीन सौ के .करीब औरतें भी इस बस्ती में रहती हैं। उनमें पार्टी का काम आसानी से हो सकता है। रेलवे के दूसरे मज़दूर भी स्टेशन के उस पार रहते हैं। एक हज़ार से ज़्यादा औरतें वहां रहती हैं। फिर औरतों का आम संगठन भी तो करना है। अभी तक इस फ्रन्ट पर पार्टी की तरफ़ से किसी कामरेड ने मज़े में काम नहीं किया था। उन तक पार्टी की आवाज़ पहुँचाने के लिये और उनके आन्दोलन को मज़बूत बनाने के लिये ज़रूरी था कि कोई ज़िम्मेदार कामरेड उस फ्रन्ट पर काम करती। इसीलिये लुई के लिये पार्टी की यह हिदायत हुई।

लुई बहुत .खुश थी। पार्टी अब उसे अपना समझने लगी है। उसे मालूम था कि पार्टी का मेम्बर होना कोई आसान काम नहीं है। पार्टी की मेम्बरी के लिये पढ़ाई और काम दोनों की .जरूरत है। लुई ने मार्क्सवादी साहित्य का थोड़ा बहुत अध्ययन किया था, लेकिन वह अभी पूरी तरह उसमें दक्ष नहीं हो पायी थी। मेनीफ़ेस्टो, कैपिटल वग़ैरह उसने देख डाले थे। दर्शन सम्बन्धी भी कुछ किताबें पढ़ी थीं। लेकिन इससे उसे संतोष नहीं था। कैपिटल पढ़ना एक बात है, उसे समझना दूसरी बात है। पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों की पक्षपात पूर्ण, ग़लत-सलत धारणाओं के लिये कैपिटिल एक चुनौती है। इसलिये

उसका अध्ययन और परिशीलन कठिन कार्य है। प्रेम से वह कई बार कह चुकी थी कि वह कैपिटल के अध्ययन में दक्षता हासिल करना चाहती है। लेकिन इसके लिये समय और अवकाश नहीं मिल सका। प्रेम स्वयं किसी पुराने कामरेड के साथ कुछ दिन रहकर कैपिटल के अध्ययन में पारंगत होना चाहता था। लेकिन काम के झोंक में इन विषयों के अध्ययन के लिये समय कहाँ मिलता है ?

लुई ने सोचा अब जनता के बीच में काम करके सच्चा मार्क्सवादी अध्ययन करूँगी। 'विद्यार्थी संघ' में काम करके वह कुछ तो सक्रिय राजनीति सीख ही चुकी थी। लेकिन भावुक तरुणों की उस दुनिया में उसे श्रेणी संघर्ष की पीठ पर खड़े हुये वर्तमान समाज के अन्तर्द्वन्दों का परिचय नहीं मिला था। कोरी देश भक्ति के नाम पर गर्म हो जाने वाले मनचले विद्यार्थियों के बीच में काम करने से उसने और सब तो सीख लिया था लेकिन दैनिक जीवन के कटु संघर्षों का अनुभव उसे नहीं था। अब वह मज़दूर औरतों में काम करेगी और उनके रोज़ाना की दिक्क़तों, मुश्किलों और परेशानियों को अपनी आँखों से देखेगी। मार्क्सवाद का सच्चा ज्ञान उसे मज़दूरों की बस्तियों में ही मिलेगा। जिस तरह वेद-शास्त्रों का सच्चा ज्ञान ऋषियों की झोपड़ियों में मिलता है उसी तरह मार्क्सवाद के दर्शन, अर्थशास्त्र, कार्य प्रणाली आदि का सच्चा ज्ञान और अनुभव मज़दूरों की झोपड़ियों, हातों, चालों में ही होता है।

पापा के पास जाने की बात सोचकर लुई का दिल घबराता था। वह परेशान थी कि वह पापा के पास कैसे जाय। घर आकर भी वह कुछ निश्चय नहीं कर पाई थी। चुपके के से अपने कमरे में जाकर पड़ रही। 'शंकर विला' जाने के लिये काफ़ी हिम्मत की ज़रूरत थी। कभी भी मि० वर्मा ने लुई को अकेले 'शंकर विला' में नहीं देखा था। गुलाब के फूल की तरह खिले प्रेम और लुई हमेशा उनके सामने आते थे। अब वह अकेली कैसे उनके पास जायेगी ! जाकर उनसे क्या बातें

करेगी ! लुई पड़ी-पड़ी यही सब सोच रही थी कि बैरा ने खबर दी कि साहब उसे बैठक में बुला रहे हैं।

मि० वर्मा और मि० लुई आपस में प्रेम की गिरफ़्तारी और लुई की शादी आदि के बारे में बातें कर रहे थे। मि० वर्मा को यह जान कर विस्मय हुआ कि प्रेम की तरह लुई भी अपने जीवन को राजनीति के लिये अर्पित कर चुकी है।

"सोलह-सत्रह बरस की बच्ची, अभी वह पालिटिक्स क्या जाने ?" मि० वर्मा ने विस्मय और अवहेलना से कहा। "अभी उसे पता ही क्या है ? राजनीति कोई खेल है ? मैं समझता हूँ प्रेम ने ही उसे भी बहकाया होगा।"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। कालेज के हड़तालों में तो वह हिस्सा लेती ही थी। हाँ, यह ज़रूर है कि मैं इस बात को नहीं समझ सका था कि मामला इतना आगे बढ़ गया है। लुई अब राजनीति छोड़ने के लिये तैय्यार नहीं है। इसीलिये उसने मि० यंग के साथ शादी करने से इनकार कर दिया। मि० यंग सरकारी नौकरी का सपना देखते हैं। लुई ने अपना प्रोग्राम कुछ और ही बनाया है।"

"क्या प्रोग्राम बनाया है ? क्या ज़िन्दगी भर योंही शादी किये बग़ैर ही रहेगी ! कहाँ से उसके लिये राजनीति के साँचे में ढाला हुआ लड़का लाया जायेगा ?" मि० वर्मा ने कहा।

"मि० वर्मा, मैं बहुत परेशान हूँ। दिसम्बर में मेरा ट्रान्सफ़र हो जायेगा। मैं चाहता था कि यहीं रहकर लुई की शादी कर दूँ। लेकिन अब ऐसा होता नहीं दीखता। लुई सिर्फ़ प्रेम की बातें मानती थी। लेकिन प्रेम आज हमारे बीच है नहीं। वह तो हम लोगों से छीन लिया गया, मालूम नहीं कितने दिनों के लिये।" मि० लुई का गला भर आया। कुछ रुक कर फिर बोले, "बहरहाल, वह तो अपने बस की बात नहीं है। १२६ दफ़ा भी अजब चीज़ है। न उसमें जुर्म का पता है न मियाद का। कब तक जेल में रहना होगा कोई नहीं कह

सकता। हर दो महीने के बाद मीयाद बढ़ा दी जाय या २६ दफ़ा लगा दी जाय, बस नज़रबन्द जेल में पड़ा सड़ा करे। अजब दफ़ा निकली है यह !"

"मि० लुई, आपका कहना दुरुस्त है। लेकिन प्रेम तो चला ही गया। अब उसके लिये सोचने से क्या फायदा ? मेरा ख़्याल यह है कि लुई से फिर एक बार शादी की बातें की जाँय। क्यों न अभी उसे बुलाया जाय ? कहाँ गई है लुई इस वक़्त ?"

"किसी से मिलने चली गई थी। देखिये अभी पता लगवाता हूँ।"

बैरा को बुलाकर मि० लुई ने पूछा तो मालूम हुआ कि लुई कहीं गई थी। अब वापस आ गई है। इस वक़्त अपने कमरे में है। "जाओ भेज दो उसे अभी, कहना पापा बुला रहे हैं, ज़रूरी काम है, फ़ौरन आ जाये।" मि० लुई ने बैरा से कहा।

"आपने उससे कभी पूछा कि आगे वह क्या करना चाहती है ?" मि० वर्मा ने पूछा।

"हाँ, कई बार कोशिश की कि उससे साफ़-साफ़ बातें करूँ लेकिन वह बात आगे बढ़ने ही नहीं देती। शायद वह ख़ुद भी अपना रास्ता साफ़ नहीं देख पाती। मि० वर्मा मुझे मि० यंग से लुई की शादी न होना बहुत अखरा। मैं उन्हें क़रीब-क़रीब वर्ड दे चुका था। लेकिन मुझे झूठा बनना पड़ा। लुई यों तो मेरी सभी बातें सर झुका कर मान लेती है। लेकिन शादी के मामले में क्यों इतना ज़िद पकड़ गई मैं समझ नहीं सका।" मि० लुई ने मि० वर्मा की तरफ़ ध्यान से देखकर कहा, मानो उनसे कोई सवाल पूछ रहे हों।

मि० वर्मा कुछ देर चुप रह कर फिर अनमने से बोले, "बात यह है मि० लुई कि साथ का बड़ा असर पड़ता है। जैसा कि मैं अभी आप से कह रहा था, लुई के इस निश्चय में प्रेम का बहुत बड़ा हाथ है। लुई अभी बच्ची है, क्या जाने राजनीति क्या चीज़ है ? प्रेम की मित्रता और कोरी भावुकता ने उसे ज़िद्दी बना दिया, वरना अगर ठंढे दिल से

लुई को सोचने का मौक़ा मिल जाय तो अब भी वह अपना रास्ता बदल सकती है। मैं ...... "

"नहीं पापा," लुई ने कमरे में आते ही कहा, वह मि० वर्मा के आख़िरी शब्दों को सुन चुकी थी, "आपका यह ख़्याल ग़लत है। मि० यंग से शादी करने के लिये प्रेम ने मुझसे कई बार कहा लेकिन मैंने ऐसा करना ठीक नहीं समझा। प्रेम को बेकार दोष देने से क्या फ़ायदा ? मैंने अपना रास्ता सचमुच चुन लिया है। कोरी भावुकता के बल पर नहीं, अपनी सारी बुद्धि लगाकर, सब कुछ सोच विचारकर। इसमें कोई शक नहीं कि मि० यंग अच्छे आदमी हैं, लेकिन उनके साथ मेरी निभ न सकेगी। मैं राजनीति में हिस्सा लेती रही हूँ; अब आगे और ज़्यादा हिस्सा लूँगी। अभी तक मैं 'विद्यार्थी संघ' में काम करती थी, अब मैं मज़दूर औरतों में काम करूँगी। मेरी पार्टी ने मुझे यही हुक्म दिया है।"

"यह पार्टी कौन ? यह कौन सी बला है ?" मि० वर्मा ने पूछा, "बेटी, मैं कुछ समझ नहीं सका। प्रेम भी अक्सर पार्टी-वार्टी की बातें किया करता था। लेकिन मैंने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया। क्या तुम बताओगी कि यह कौन सी पार्टी है जो तुम लोगों को इस तरह का हुक्म दिया करती है ?"

"हाँ, पापा, यह कम्युनिस्ट पार्टी है। दुनिया भर के मज़दूरों की पार्टी-तीसरे अन्तर्राष्ट्रीय की हिन्दुस्तानी शाखा, हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी है। यह पार्टी मज़दूरों में काम करती है, उनको संगठित करती है। और उनके नेतृत्व में सारी जनता को संगठित करके स्वराज्य की तरफ़ बढ़ने की कोशिश करती है। इस पार्टी के सदस्य किसी भी क़ुर्बानी से नहीं डरते। उन्हें घर-बार, सुख-समृद्धि का मोह नहीं होता। प्रेम इसी पार्टी का सदस्य है। इसीलिये वह हमेशा आपसे इसके बारे में बातचीत किया करता था। मैं भी उसी पार्टी के आदेश से जनता में राजनीतिक काम करती हूँ।" लुई ने बहुत गम्भीरता और दृढ़ता से कहा।

मि० वर्मा कम्युनिस्ट पार्टी का नाम अखबारों में कई बार पढ़ चुके थे। उनके अन्दर धुधँला सा यह ख़्याल था कि रूसी बोलशेविकों की ही तरह यह भी एक पार्टी है जो कि मज़दूरों में काम करती है। लेकिन उनका प्रेम भी इसी पार्टी का सदस्य है, इसका उन्हें पता नहीं था। प्रेम के कमरे में अर्थशास्त्र सम्बन्धी मोटी-मोटी किताबों, साइक्लोस्टाइल के छपे पर्चों और पैम्फलेटों को भी उन्होंने देखा था। मगर कभी भी उन्होंने ध्यान पूर्वक उन्हें पढ़ा नहीं था। उन्हें यह भी ख़्याल आया कि प्रेम अपनी एक आलमारी हमेशा बन्द रखा करता था। लेकिन उसमें क्या है इसका ध्यान उन्हें कभी भी नहीं आया। अब, लुई के यह कहने पर कि प्रेम कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य है, उनको सभी बातें साफ़ समझ में आने लगीं। प्रेम ने इधर कुछ महीनों रात-रात भर जागकर क्या पढ़ा, दिन भर धूप में साइकिल की पीठ पर क्यों दौड़ता रहा, बात-बात में मज़दूर, किसान, आज़ादी की चर्चा क्यों किया करता था, उसके पहिनावे, और रहन-सहन में इतनी लापरवाही क्यों आ गई थी, उसके व्यवहार में कुछ रुखाई और तेज़ी भी क्यों आने लगी थी, इन सबका राज़ अब खुल गया।

मि० वर्मा उदास होकर लुई की तरफ़ देख रहे थे। उन्हें ऐसा लगा कि प्रेम अब फिर अपनी पुरानी स्थिति तक वापस नहीं आने का। प्रेम के गिरफ़्तार होने पर उन्हें ठेस लगी थी, उनका सपना बिखर गया था, लेकिन इस कथन के बाद उस सपने के बिखरे हुये दाने भी चूर-चूर हो गये। ऐसा लगा कि अब उनकी आख़िरी अवस्था निराशा, अवसाद और असीम अन्धकारपूर्ण है। मि० वर्मा का माथा सिकुड़ गया। आँखों के निचले हिस्से में झुर्रियाँ पड़ गईं। वे एकटक लुई की तरफ शांत होकर देखते रह गये।

लुई यह सब कुछ न समझ सकी। मि० वर्मा की मनोदशा का उसे ज़रा सा भी अन्दाज़ नहीं लगा। वह अपनी पार्टी के बारे में कुछ न कुछ कहती गई। मि० लुई अब तक उदास बैठे सब कुछ सुन रहे थे।

उन्होंने लुई को इसलिये बुलाया था कि शादी के बारे में कुछ बात-चीत हो, मगर लुई ने आते ही यह सब कह डाला। उनकी इच्छा हुई कि लुई अब ये बातें बन्द कर दे। लेकिन वे उसे रोक नहीं पाये। वे तय नहीं कर सके कि लुई से क्या कहें। बैरा जब चाय लेकर आया तो मि० लुई ने मि० वर्मा का ध्यान उधर खींचा। अब टापिक बदल देने का अच्छा मौका था।

"अच्छा बेटी, यह बताओ कि क्या तुमने सचमुच शादी करने का इरादा बिलकुल छोड़ दिया है? तुम जानती हो कि मैं अब बूढ़ा हो चला। इस ट्रान्सफ़र के बाद मैं पेनशन भी ले लूँगा। तुम मेरी अकेली सन्तान हो। तुम्हीं से मेरे घर का चिराग़ जलता है। मैं तुम से कहना चाहता हूँ कि तुम शादी करलो। अगर मि० यंग से तुम शादी न भी करना चाहो तो किसी दूसरे से सही। मैं कोई दूसरा तुम्हारे पसन्द का लड़का ढूंढ लूँगा।"

लुई से इस तरह पापा ने कभी भी बात नहीं किया था। वह परेशान हो गई। पापा कम बोलने के आदी थे। उनकी बातों में इतनी आजिज़ी कभी भी नहीं रहती थी। अपनी सन्तान के सामने सभी को झुक जाना पड़ता है। मि० लुई बड़े अफ़सर थे। रोब से रहना, अबकी आजिज़ी को रहम खाकर कबूल कर लेना, उनकी ज़िन्दगी का शेवा था। बुज़ुर्ग आदमी थे। सोचते थे साल दो साल में पेनशन हो जायेगी तो शांत जीवन बितायेंगे। लुई एकलौती लड़की थी। अच्छा लड़का ढूँढ कर शादी करके अपना आख़िरी फ़र्ज़ भी पूरा कर देना था। इसीलिये बार-बार चाहते थे कि लुई शादी कर ले। मि० यंग उनके स्टैन्डर्ड के आदमी थे। होनहार भी थे। लेकिन लुई ने जब उनसे शादी करने से साफ़ इनकार कर दिया तो वह इस बात पर तैय्यार हो गये थे कि लुई जिससे भी चाहे शादी करले। वे ख़ुशी-ख़ुशी मंज़ूर कर लेंगे। लेकिन लुई का रुख़ अजीब हो रहा था। पहाड़ से लौटते वक्त उसने साफ़-साफ़ कह दिया

था कि वह अभी फ़िलहाल शादी करेगी ही नहीं। मि० लुई की परेशानी की यही वजह थी।

लुई पापा को जवाब देना चाहती थी लेकिन वह कुछ कह नहीं सकी। मि० वर्मा अब तक सँभल चुके थे। अपना मौन तोड़कर बोले, "देखो लुई, हम लोग तुम्हारे साथ ज़बरदस्ती नहीं करना चाहते। लेकिन यह ज़रूर है कि अगर तुम शादी कर लोगी तो हम लोगों को बड़ी राहत मिलेगी। इसीलिये बार-बार तुम से कहा जाता है कि तुम जहाँ भी चाहो, जिससे भी चाहो शादी करलो। मि० लुई को इससे बड़ा आराम मिलेगा।"

"पापा, मेरी गुस्ताख़ी माफ़ हो। मैंने कभी आप लोगों की बात नहीं टाली। न कभी आगे आप लोगों की कोई बात टालूँगी। बस एक प्रार्थना है वह यह कि आप मुझे शादी के लिये मजबूर न करें। अभी तक मि० यंग का झगड़ा था। वह तो ख़ैर किसी तरह ख़त्म हो गया। अब मैं इस तरह के झगड़े में पड़ना नहीं चाहती। मैं शादी करूँगी, लेकिन कब और किससे यह मैं अभी नहीं कह सकती। अभी तो मेरी पार्टी पर आफ़त आई है। क़रीब-करीब सभी कामरेड गिरफ़ार हो चुके हैं, थोड़े से लोग बचे हैं। उन्हीं को पार्टी का सारा काम देखना पड़ता है। ऐसे वक़्त शादी करना मैं राजनीतिक अपराध समझती हूँ। मुझे आप मजबूर न करें" कहती हुई लुई उठी और कमरे से बाहर हो गई। जाते समय उसका सारा शरीर काँप रहा था। ओंठ फड़क रहे थे। उसके सर में चक्कर आ रहा था। उसने जिस दृढ़ता से ये बातें कहीं थीं उस पर मि० वर्मा और मि० लुई दोनों को आश्चर्य हो रहा था। लुई के बर्ताव में यह परिवर्तन बिल्कुल नया था। लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि लुई अब पहिले जैसी अबोध बालिका नहीं थी। उसकी दुनिया ही बदल चुकी थी!

लुई चली गई और मि० वर्मा तथा मि० लुई बहुत देर तक चुपचाप वहीं बैठे रहे। आज उन दोनों पिताओं की ज़िन्दगी का एक बड़ा अध्याय समाप्त हो रहा था। दोनों ज़िन्दगी भर अपने दिलों में बड़े-बड़े अरमान पालते रहे। दोनों ने अपने बच्चों में भविष्य के आशाप्रद, सुखद सपने देखे थे। दोनों में से किसी को भी विश्वास नहीं था कि उनको अपनी ही सन्तान द्वारा इतना बड़ा धक्का लगेगा। दोनों को इन बच्चों पर उचित गर्व था। दोनों होनहार थे। लेकिन होनी होकर ही रहती है। भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है? प्रेम अपनी पढ़ाई-लिखाई, सुख-सम्पदा त्याग कर कारावास की अमानुषिक यातनायें भोग रहा है। लुई अब भी सँभल सकती थी। लेकिन वह भी प्रेम के ही मार्ग पर दृढ़ता के साथ बढ़ती जा रही है। जानें उसके भविष्य में क्या लिखा हुआ है।

मि० लुई का ड्राइंग रूम दोनों मित्रों के रहते हुये भी सूना और निर्जीव हो रहा था। वही सजावट के सामान, सोफ़ा, कुर्सी, वाल-पिक्चर, वही सिगरेट के कश, सब कुछ वही, लेकिन सभी के ऊपर निराशा की एक काली छाया सी पड़ रही थी, सभी धूमिल दिखाई पड़ते थे। सारा कमरा नाउम्मेदी और नाकामी की तसवीर बन रहा था। दोनों मित्र बहुत देर तक यों ही बैठे सिगरेट का धुंआ उड़ाते रहे।

धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। युनिवर्सिटी खुलने की तारीख़ नज़दीक आ गई। लुई ने निश्चय कर लिया था कि अब वह युनिवर्सिटी में अपना वक़्त ख़राब नहीं करेगी। उसकी आँखों के सामने अँधेरी गलियाँ थीं, कीचड़ और गन्दगी से भरी हुई। बदबू और मक्खियों से जान बचाकर आगे बढ़ने पर कच्ची कोठरियाँ जिसके टूटे-फूटे छाजन, और गिरती-पड़ती दिवारें मानो पुकार कर कह रही हों, 'इधर मत आना, इनमें इन्सान नहीं इन्सान की ही शकल के ऐसे लोग बसते हैं, जिनका काम दिनभर बोझ ढोना और रात को आधा पेट रूखी-सूखी रोटी खाकर बस सो रहना है।' लुई ने सोचा अब इनके बीच

में ही उसके दिन कटेंगे। इनके दुबल-पतले हड्डी-पसली के ढाँचे से बच्चे मानो उसे बुला रहे हों, 'माँ, आओ हमारी हालत तो देखो।'

स्टेशन के उस पार जहाँ रेलवे के मज़दूर रहते हैं वहाँ भी लुई को जाकर काम करना था। उनके बीच में रह कर उनकी हालत का अध्ययन करके उनका संगठन करना था। लुई इस नई दुनियाँ को अपनी कल्पना की आखों से अभी तक देख रही थी। यों तो उसे एक दो बार इन जगहों पर जाना पड़ा था, लेकिन उस समय वह दर्शक की हैसियत से गई थी और वहाँ के रहने वालों को दूर से ही देख उनकी दयनीय अवस्था पर आँसू बहाकर वापस चली आई थी। लेकिन अब अपनी आँखों उन लोगों की दुर्दशा देखकर उन्हें रास्ता दिखलाना था। कल्पना और भावुकता के आधार पर निर्मित उसकी सेवा-भावना अब कारगर न होगी। रोज़ाना की दिक्कतों और परेशानियों को देखकर उनके मूल कारणों तक पहुँचना होगा, अपने मार्क्सवादी ज्ञान के सहारे उनका विश्लेषण करना होगा और फिर रास्ता निकाल लेने पर उसपर चलने के लिये लोगों को तैय्यार करना होगा। लुई अब इस कर्मभूमि पर पाँव रखने वाली है। इस नयी दुनिया में उसका काम नया होगा, उसका व्यवहार नया होगा, उसके तजरबे नये होंगे, सब कुछ नया होगा।

यह सब सोचकर लुई की आँखों में आशा और अल्हाद छलकने लगे।

७

सच्चाई की आँच में

'रानी', रमेश की क़लम आगे नहीं बढ़ी। रेखा का चित्र सामने था। ओठों पर मुस्कराहट, आँखों में मस्ती! भोलेपन और अल्हड़पन का अच्छा संयोग था। नववयस्का तरुणी रेखा रमेश के सारे आकर्षण और भावुकता का केन्द्र थी। रमेश की कल्पना इस साकार सम्बल के सहारे अपनी भावनाओं को शब्दों में पिरोया करता था। कवि हृदय रमेश उस संकुचित वातावरण में अपनी कला को मन ही मन मुखरित करता रहता था। आज पत्र लिखने बैठा तो उसकी लेखनी ने साथ नहीं दिया। प्रेम की गिरफ्तारी का उसके ऊपर गहरा असर पड़ा था। उसका साथी और भाई प्रेम उससे छिन गया था। इससे उसके दिल को ठेस लगी की। उसे ऐसा लगा कि वह सचमुच कुछ उद्भ्रान्त-सा, पथभूला-सा एक धारा में बहता चला जा रहा है। वह धारा सरिता की अन्य धारा से बिल्कुल अलग है। सरिता की अन्य लहरियाँ उठती हैं, एक दूसरे से प्रेमालाप करती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। उनमें उभार आती है और गिराव की। लेकिन उनकी गति में कोई बाधा नहीं पहुँचती। उनका कलकल स्वर कभी धीमा कभी तेज़ सुनाई पड़ता ही

रहता है। उसके बुद-बुद से बबूले बनते बिगड़ते ही रहते हैं। लेकिन रमेश की जीवन धारा इन सबसे अलग, बिल्कुल अलग हो गई थी। न तो आलोड़न-प्रलोड़न—न गलबहियाँ, कलकल स्वर भी धीरे-धीरे मन्द हो रहा था। गति, उभार, गिराव सभी में कमी आती जा रही थी। वह इस धारा में मानो डूबता जा रहा था; अन्तर्हित होता जा रहा था। जब धारा में गति नहीं तो वह रमेश को अपने सहारे आगे ले ही कैसे जा सकती थी? रमेश को अपनी गति भी रुकती-सी मालूम पड़ने लगी। क्या इसीलिये उसने रेखा से स्नेह किया? क्या उसके जीवन के सारे आदर्शों की पूर्ति रेखा ही है? रेखा को पा जाने के बाद उसके जीवन की सारी महत्वाकांक्षाओं का मूल श्रोत ही जैसे सूखने लगा था। क्या यह बातें सच हैं?

रमेश ने सोचा 'प्रेम ने सही तो कहा था—मेरा कलाकार मर रहा है। मैंने रेखा को ही अपना देवता बना कर पूजा। रेखा को छोड़ बाकी दुनिया में मेरे लिये आकर्षण की चीज़ और कोई नहीं रह गई। बाहरी दुनिया से मैंने अपनी आँखें मूँद ली। मेरी कल्पना, अनुभूति, भावुकता सभी कुछ रेखा के आँचल में आश्रय पाने लगी। महान मानवता की शीतल छाया को छोड़ मैंने एक कमजोर स्त्री का सहारा लिया, यह मैंने बहुत बड़ी ग़लती की! रेखा को मेरी परवाह है। प्रेम की गिरफ़्तारी की उसको चिन्ता नहीं, बस "तुम्हारे ऊपर तो कोई आफ़त नहीं आयेगी" इसकी उसे चिन्ता है। मुझसे इतना मोह क्यों? इसलिये कि मैं उसका हूँ। इसलिये कि वह मुझे पसन्द करती है, चाहती है। परोपकारी, जनसेवी प्रेम की कारा-यातनाओं की चिन्ता रेखा को नहीं हुई। अपने प्रेमी, स्नेही और प्रियतम की मङ्गल-कामना ही उसकी चिन्ता का प्रधान विषय है!

क्या नारी सचमुच इतनी स्वार्थी होती है! 'रेखा' तुम मेरे सामने हो। तुम्हारी साक्षी देकर कहता हूँ कि मैं तुम्हें जी जान से प्यार करता हूँ। तुम मेरी हो, इसका मुझे गर्व है। तुम मेरी आशाओं का केन्द्र

हो। लेकिन, अब मेरा मन तुम्हारी ओर से उचटता क्यों जा रहा है ! अब तुम मुझे अपनी ओर बरबस खींच क्यों नहीं पातीं ? अब मैं सब कामों को छोड़कर विह्वल, पागल की तरह तुम्हारे पास भाग आने के लिये अपने को मजबूर क्यों नहीं पाता ? एक हफ्ते हो गये। मैं तुम्हारे पास नहीं आया। अब भी 'रामगंज' आने की इच्छा नहीं होती। तुम्हें एक बार देख लेने के लिये तड़प नहीं उठता। मेरी मनोदशा में यह परिवर्तन क्यों ? मेरा रुख़ अपने आप इस तरह बदलता क्यों जा रहा है ! मेरे जीवन में कोई भयंकर घटना तो नहीं घटने वाली है !'

रमेश उठा और उसने दीवार से टंगा हुआ रेखा का चित्र उतार लिया। बहुत देर तक उसे घूर-घूर कर देखता रहा। धीरे से उस चित्र को अपने मेज़ पर रख दिया। बहुत देर तक कुर्सी पर यों ही बैठा रहा। फिर उठा और आलमारी के ड्राअर से प्रेम की तसवीर निकाल कर उसे रेखा के बग़ल में रख दिया। वह सिगरेट जलाकर धुआँ उड़ाता रहा। उसकी निगाहें दोनों चित्रों पर जमी रहीं। दोनों में क्या अन्तर है ? दोनों में स्नेह, आकर्षण, सानिध्य है ! दोनों में रूप है, जवानी है, कविता है। दोनों पर मैं जान देता हूँ। फिर भी दोनों में कुछ अन्तर है। कुछ नहीं. भारी अन्तर है। रेखा की करुणा, दया, स्नेह की भावना मेरे ही तक सीमित है। मानव स्वभाव के ये सहज गुण प्रेम में भी है। लेकिन वह किसी व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नहीं। प्रेम मुझे उतना ही प्यार करता है जितना कि रेखा ! लेकिन प्रेम की दुनिया बड़ी है। उसके इन गुणों की शीतल छाया में अन्य कितने ही प्राणियों को प्राण, जीवन, अवलम्बन मिलता है। प्रेम मेरा होते हुये भी और लोगों का है। रेखा मेरी है और केवल मेरी। प्रेम मुझे अपना समझते हुये भी, मुझ पर अपना सहज प्रेम प्रगट करते हुये भी अपने हृदय में असंख्य नर-नारियों को स्थान दे पाता है। रेखा मुझ में ही अपनी सारी भावुकता और भावनाओं को सीमित रखती है। कितना बड़ा अन्तर है यह !

मेरी आशा, मेरा आश्वासन, मेरी रानी, क्या तुम इस अन्तर को देख और समझ सकोगी ? काश कि तुम ऐसा कर पातीं ! सच जानो, तुम मुझे अपना रखते हुये भी औरों को बना सकती हो। तुम पर ही मेरे जीवन का सारा भविष्य निर्भर है। प्रेम की आशायें अब भी पूरी हो सकती हैं। केवल तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। मैं सचमुच तुमसे स्नेह करता रहूँगा। तुम्हारा ही हमेशा रहूँगा। लेकिन अब तुम मुझे उस नई दुनिया में भी जाने दो, जहाँ जाने और जिसे देखने के लिये प्रेम ने मुझे हमेशा कहा है। मेरा मानव, मेरा कलाकार उस अवस्था में और भी ऊँचे उठ सकेगा। उस समय तुम्हें प्रसन्नता होगी, गर्व होगा ! लेकिन क्या तुम ऐसा करोगी !'

'देखो रेखा, मैं भी पुरुष हूँ। मैं भी अपना रास्ता तय करके उसपर चल सकता हूँ। तुम मुझे इतना कमज़ोर मत समझना कि मैं कुछ कर ही नहीं सकता। फिर भी, मैं तुम्हारी मदद चाहता हूँ। तुम मेरी हो, तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये।'

अपने मन में इसी प्रकार बड़बड़ाता हुआ रमेश कमरे में टहलने लगा। उसने कई बार सोचा कि वह पत्र लिख ही डाले। लेकिन इससे रेखा को गहरा 'शाक' लगेगा। क्यों न मैं खुलकर रेखा से ये बातें कहूँ। अगर सचमुच वह मुझसे स्नेह करती है तो वह मेरा साथ देगी और मैं इस सीमित संसार से निकल कर उस दुनिया की ओर जा सकूँगा जिधर प्रेम मुझे ले जाना चाहता था। रमेश ने निश्चय किया कि शाम को वह स्वयं रेखा के पास जायेगा, उससे साफ़-साफ़ बातें करेगा और अपने भावी प्रोग्राम की सफलता के लिये उसकी मदद माँगेगा।

बाहर थोड़े-थोड़े बादल घिर रहे थे। ठंढी-ठंढी हवा चली तो रमेश को अच्छा लगा। गंभीर विचार और अन्तर्द्वन्द से वह थकने लगा था। खिड़की के सहारे आकर खड़ा हो गया। बादल घने हो गये, हवा तेज़ चली और धीरे-धीरे बूँदा बाँदी होने लगी। मिट्टी की

सोंधी महँक रमेश को अच्छी लगी। चिलचिलाती धूप और तपन के बाद यह शीतल हवा, बादलों का उमड़ना-घुमड़ना, हल्की हल्की बूँदों की वर्षा, रमेश खिल उठा! उसका कवि गा उठा,

प्रकृति नटी के हाव-भाव में यह नूतन परिवर्तन,
तृषित मेदिनी के ओठों पर टपटप अमृत वर्षण!
शीतल, सजल, बयार छिपाये आँचल में नव जीवन,
आई देने प्राण-दान, करले स्वीकृत रे कवि-मन!
अब खिल जायेगी तेरे जीवन की सूखी डाली,
छा जायेगी तेरे जीवन तरु पर नव हरियाली!
नित-नित नूतन परिवर्तन की अब आई है बारी,
करले कवि, इस नवजीवन के स्वागत की तैयारी!!

रमेश बहुत प्रसन्न था। उसका बोझ जैसे कुछ हल्का हो गया था। वह अपने शरीर में एक नये जीवन का अनुभव कर रहा था। अतीत के बोझ से दबा हुआ रमेश का दिल अभी अभी बैठा जा रहा था, लेकिन अब भविष्य की सुन्दर कल्पनाओं के द्वार जैसे खुलने लगे थे। शाम को वह रेखा के पास जायेगा। अपना हृदय खोल कर उसके सामने रखेगा। उसकी सहायता की भीख माँगेगा। रेखा अवश्य उसे भिक्षादान देगी। रमेश को रेखा का सहारा मिल जायेगा तो वह निश्चय ही आगे कुछ कर सकेगा।

शाम को रेखा के घर रमेश पहुँचा तो उसे सभी चीज़ें स्वाभाविक और हमेशा की तरह लगीं। बिजली की रोशनी में उतनी ही चमक थी। पङ्खा उसी तरह रखा हुआ था। तसवीरें दीवारों पर पहिले की तरह ही लटकी हुई थीं। फ़र्श, क़ालीन, तकिया, पानदान, पीकदान, सभी अपनी-अपनी जगहों पर मौजूद थे। लेकिन रेखा की स्वर लहरी, तबले की ठनक, इनका पता न था। रमेश समझ न सका कि मामला क्या है। वह सीधे ऊपर चढ़ गया। कोई भी दिखाई न पड़ा। तबलिये, सितारिये किसी का पता न था। वह बग़ल वाले कमरे में गया। सोचा

बुद्धू से ही कुछ पता लगेगा। चौके की तरफ़ बढ़ा तो बुद्धू दिखाई दिया, चूल्हा फूँक रहा था।

"कहो बुद्धू, बाई जी कहाँ हैं! यहाँ इतना सन्नाटा क्यों है!" रमेश ने पूछा।

"क्या बताऊँ बाबू जी" बुद्धू ने कुछ परेशानी और निराशा भरे स्वर में कहा, "जब से आप उस दिन गये,बाईजी बहुत उदास रहती हैं। उस दिन से गाना-वाना सब बन्द है। दिन भर कमरे में पड़ी-पड़ी करवटें बदलती रहती हैं। शाम को रिक्शा करके न जाने कहाँ चली जाती हैं और देर से वापस आती हैं। तबलिये, सितारिये को पन्द्रह दिन की छुट्टी दे दी है। उस्ताद जी से भी उलझ पड़ीं। उसी दिन से उन्होंने भी आना बन्द कर दिया। हमेशा खिझी-सी रहती हैं। किस से भी बात नहीं करतीं। क्या बताऊँ बाबू जी, जाने क्या हो गया बाई जी को........" बुद्धू कहता गया, "आप को एक दो बार पूछा था रात को लौटने पर। 'नहीं' में जवाब पाने पर कह देती 'हाँ, अब वह क्यों आयेंगे मेरे यहाँ' और उदास होकर अन्दर चली जातीं। एक दो बार मैंने भी हिम्मत की पूछने की तो कहने लगीं, 'बुद्धू तुम क्या जानो इन बातों को ? मैं अब इस पेशे से ऊब गई हूँ। मैं इस पेशे को छोड़ना चाहती हूँ।' मैं समझाता, 'बाई जी पेट कैसे चलेगा, भगवान ने आपको रूप-रंग, उम्र, हुनर सब कुछ दिया है। यही वक़्त है, उम्र ढल जाने पर क्या कमाई हो सकेगी !' तो वह चुप होकर सर नीचा कर लेतीं, कुछ देर सोचतीं और फिर अन्दर जाकर लेट रहतीं! बाबू जी जाने क्या हो गया है उनको ? क्या बताऊँ बाबू जी......।"

रमेश सारी परिस्थिति समझ गया। उसकी बातें रेखा को लग गईं। यही तो वह चाहता था। इसीलिये तो उसने चुभती बातें उस दिन कहीं थीं। तीर सही बैठा, घाव शायद ज़्यादा हो गया। मुझे और मुलायम शब्दों का प्रयोग करना चाहिये था। मैं भी तो भावुकता में ऐसा बह जाता हूँ कि क्या बताऊँ। नारी-हृदय कोमल होता है।

उसे ठेस नहीं पहुँचनी चाहिये। ठेस पहुँचाना अगर बहुत ज़रूरी हो जाय तो भी सतर्कता से काम लेना चाहिये।

"देखो बुद्धू, मैं ऊपर छत पर जा रहा हूँ। बाई जी आवें तो ख़बर देना। उनसे भी कह देना बाबूजी ऊपर इन्तज़ार कर रहे हैं, समझे।" कहकर रमेश ने सिगरेट जलाया और छत पर पहुँच गया।

ऊपर हवा ठंढी थी, रमेश कुर्सी पर पैर फैलाकर बैठ गया। उसकी कल्पना के पंख फड़क उठे। विचारों में डूबा रमेश कुछ देर के लिये फिर भूल गया कि वह किस परिस्थिति में है और उसे क्या करना चाहिये। वह सोचने लगा 'आख़िर यह कलह, संघर्ष, द्वन्द कब तक चलेगा ! रेखा को समाज घृणित और पतित समझता है, इसलिये कि वह वेश्या है। समाज मुझे भी नीची निगाह से देखता है, इसलिये कि मैं वेश्यागामी हूँ। अगर रेखा मेरी विवाहिता स्त्री होती तो भी समाज मुझे पतित समझता ? शायद नहीं। उस समय हम दोनों शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते थे। उस समय भी मैं रेखा को उतना ही प्यार करता, उस पर उसी तरह जान देता जैसा कि अब दे रहा हूँ। लेकिन समाज की अंगुश्तनुमाई से बच जाता। समाज मेरी प्रशंसा ही करता, शिकायत नहीं। लेकिन समाज को इस प्रकार एकतरफ़ा डिगरी दे देने का क्या हक़ है ? क्या उसने यह भी देखने की कोशिश की कि मेरा रेखा का सम्बन्ध कैसा है। शायद उसको इसकी परवाह नहीं। कितना ठीक कहा था प्रो० शर्मा ने, 'आप में प्यास है, ऐसी कि कभी पूरी नहीं हो सकती। किन्तु आपकी प्यास को इस सीमा तक आस्वाभाविक और विकृत कर डालने की सारी ज़िम्मेदारी समाज की है। तो फिर ऐसे समाज का ही निर्माण क्यों न कीजिये, जिसमें रस ही रस है—प्यास को जो तृप्ति का रूप देने में समर्थ है ?'

मैं रेखा को प्यार करता हूँ। लेकिन मेरा प्यार समाज को खलता है। मैं समाज की परवाह करता हूँ यह मेरी कमज़ोरी है। मुझे समाज के विरुद्ध विद्रोह करना चाहिये। लेकिन इसके लिये मेरे अन्दर

हिम्मत नहीं। रेखा के प्यार में मैं सारे समाज को भूल गया। मैं अपने उन कर्तव्यों को भी भूल गया, जिनका भूलना घातक पाप है। जिस समाज ने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया उसकी आशाओं पर पानी फेर कर मैंने अपराध किया। समाज उसी का दण्ड मुझे दे रहा है। रेखा को प्यार करते हुये भी मैं अपने कर्तव्यों को निभा सकता था। मैं रेखा के साथ रह कर भी अपने कवि को जीवित, जागरुक और सचेत रख सकता था। मुझे अपनी क़लम रोकने का कोई अधिकार नहीं था। मेरी लेखनी से अगर समाज के प्रति विद्रोह के तराने निकलते रहते तो मेरे कितने ही साथी निकल आते जिनका सहयोग लेकर मैं समाज की बुराई और अत्याचारों के विरुद्ध नारा बुलन्द कर सकता और साथ ही अपनी कला और कविता के द्वारा उद्‌बोधन और जागरण के गीत गाकर समाज की सोई हुई आत्मा को जगाता, ऊपर उठाता और आगे बढ़ने के लिये उसे प्रेरित करता।

नाश और सृजन एक ही प्रकिया के दो अंग हैं। विनाश और निर्माण गलबहियाँ डालकर ही आगे बढ़ने के आदी हैं। समाज के प्रति विद्रोह करनेवाले व्यक्ति के अन्दर दम और हिम्मत होनी चाहिये। हिम्मत के लिये चरित्रबल और चरित्रबलके लिये सचाई और उसकी अनुभूति का अवलम्बन होना चाहिये। सच्चाई के ज्ञान के लिये तर्क, विश्लेषण की क्षमता, समझ, दूरदर्शिता सभी की आवश्यकता है। मोह और प्रेम के पर्दे में ढकी हुई आंखें, इन कामों को नहीं कर सकतीं। इसलिये प्रेम की तरह विशाल हृदय, प्रखर बुद्धि और चरित्र बल के साथ विद्रोह की ज्वाला सुलगाने में तत्पर होने की क्षमता मुझ में भी होनी चाहिये। तभी मैं भी विनाश-कार्य का संपादन करके सृजन-कार्य में सहयोग प्रदान कर सकता हूँ।

मेरी रेखा इसमें मेरी सहायता करे तो कितना सुन्दर हो! वह भी तो कलाकार है। नृत्य कला, नूपुर की रुनझुन, मोहक स्वर लहरी, रेखा की ये सहेलियाँ हैं। इनका प्रयोग दूसरे कामों में भी हो सकता है।

पेट की ज्वाला को शांत करने के लिये आज इन्हें इस्तेमाल किया जा रहा है। इन्हीं को समाज की सोई हुई आत्मा को जगाने में भी काम में लाया जा सकता है। कला आनन्द प्रमोद की वस्तु है इसमें कोई शक नहीं। लेकिन समाज को स्वस्थ रखने के लिये, उसकी सांस्कृतिक थातियों की रक्षा करने के लिये और इन कलाओं के निरन्तर विकास लिये यह आवश्यक है कि इनकी ओर से समाज का रुख बदले और इनकी भी क़द्र समाज में हो। लेकिन यह तो तभी हो सकता है जब कि ये कलाकार और गुणज्ञ भी अपनी कृतियों को समाज की पृष्टभूमि को ध्यान में रख कर विकसित करें। समाज की भलाई इसी में है कि वह इनको उभरने और बढ़ने का अवसर प्रदान करे और उनका हौसला बढ़ाये।

समाज की विकृतियों का मूलोच्छेदन तभी हो सकता है जब कि हम उसके लिये तत्पर हो जायँ। सतत प्रयत्न और संघर्ष से समाज की बुराई ख़त्म की जा सकती है और समाज को नये-नये, सुन्दर-सुन्दर उपकरणों से विभूषित किया जा सकता है। समाज की इस स्वस्थ प्रगति में सहायक होना ही हमारे जीवन का आदर्श होना चाहिये। सरिता में अनन्त लहरियाँ क्रीड़ा करती रहती हैं। उन्हीं में से एक हम भी हैं। क्यों न हम भी सरिता के उस गतिमय उनमुक्त प्रवाह में अपने को विसर्जित करदें। समाज की सरिता में हमारा स्थान ठोस पत्थर की तरह नहीं उन लोल लहारियों की भाँति है जिनमें गति है. जीवन है, प्राण है और जिनमें समाज की उस महाधारा में आत्मविसर्जन कर देने की क्षमता भी है। सरिता इन्हीं जीवन लहरियों की समष्टि है, कुल जोड़ है। लहरियाँ इसी सरिता का अंग हैं। दोनों की स्थिति एक दूसरे पर निर्भर हैं। दोनों एक दूसरे को जीवन और गति प्रदान करती हैं ..

सहसा रमेश की आँखें किसी ने बन्द करलीं। रमेश को संस्पर्श सुख मिला। मुलायम, पतली उँगलियाँ, छूते ही रोमाँच हो आया।

"कौन, रेखा ?", रमेश अचकचा कर बोला, उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई थी।

"नहीं, पहिचान लो तभी आँखें खुलेंगी। पीछे से आवाज़ आई।

"अरे भाई, मैं पहिचान गया।"

"बोलो, बताओ मैं कौन हूँ।"

"रेखा, तुम···"

"रेखा, तुम्हारी कौन ?"

"मेरी रानी, जीवन संगिनी"

रमेश की आँखें खुल गई। चाँद सा मुखड़ा सामने मुस्करा रहा था। आँखों की खुशी रस से भरी बूँदों के रूप में एक दो करके टपक रही थीं।

"बोलो, इतने दिनों तक कहाँ रहे ? आये क्यों नहीं ?" रेखा दौड़ कर रमेश की गोद में आ गई। रमेश मंत्र मुग्ध सा रेखा की सहज, स्वाभाविक चपलता का आनन्द ले रहा था। रेखा उसकी गोद में थी। ऊपर चन्द्रमा अपनी रजत रश्मियों से इस जोड़े को अपनी शीतल ज्योत्सना में लपेटे ले रहा था। तारों ने आशीर्वाद दिया 'जोड़ा अमर हो।' रमेश चुप एकटक रेखा को देखता रह गया। रेखा रमेश को देखती, अपनी मुलायम उँगलियों से उसकी बाँहों को दबाने का प्रयत्न करती, फिर चुपके से उसके सीने पर सर रख कर आँखे मूँद लेती।

इस मूक प्रेमालाप की अवधि तब समाप्त हुई जब बुद्धू ने आवाज़ दी, "बाई जी खाना ठंढा हो रहा है। एक बजने को आया। आप तो अपनी तन्दुरुस्ती बिगाड़ डालेंगी इस तरह।" रेखा उठ कर खड़ी हो गई। बोली, "अच्छी बात है, यहीं खाना लाओ।"

बुद्धू ने सामने बिछी दरी पर चदरा डाल दिया और खाना परस कर, पानी रख कर, पान लगाने चल दिया।

रमेश ने, बिना किसी उज्र के साथ ही खाना स्वीकार कर लिया। रेखा ने रमेश को खिलाया, रमेश ने रेखा को। बीच बीच में बातें भी चल रही थीं।

"तो तुम बहुत नाराज़ हो रेखा ?" रमेश ने पूछा, जैसे वह स्वयं ही अपराधी हो।

"हाँ, नाराज़ हूँ और बहुत ज़्यादा।"

"कितना ज़्यादा ?"

"इतना ज्यादा कि बता नहीं सकती। सोचा था कि तुम से अब कभी भी नहीं बोलूँगी लेकिन......

"लेकिन क्या ? इस समय तो तुम्हीं पहिले बोली।"

"यही तो मजबूरी है। लाख तय करती हूँ, लेकिन तुम्हारे सामने आते ही जैसे मेरे सारे गुस्से पर बर्फ़ पड़ जाये।"

"मैं तो ग़ुस्सा नहीं हुआ था।"

"तुम क्यों ग़ुस्सा होते ? मैंने तो तुम्हें कुछ कहा नहीं था। तुम्हीं ने मुझे एक लेक्चर पिलाया था।"

"हाँ रेखा, बात तो तुम ठीक कहती हो। अच्छा बताओ, उन बातों को भूल सकती हो ?"

"ना"

"कब तक याद रखोगी ?"

"बहुत दिनों तक—तबतक जबतक वह दिन न आ जायगा जब कि तुम्हें कुछ कहने का मौक़ा ही न मिले।"

"रेखा, मैं समझा नहीं, तुम क्या कह रही हो, क्या कहना चाहती हो, मैं तो कुछ परेशान सा हो रहा हूँ।"

"तुमने मुझे क्यों डाँटा ? तुमने मुझे एक पतित वेश्या समझा था। तुमने मुझे फटकारा और घृणा भरी दृष्टि का ही पात्र समझा था। लेकिन तुम्हें क्या मालूम कि उस बाहरी दिखावे के भीतर एक मुलायम, कोमल-सी चीज़ भी है जिसे नारी हृदय कहते हैं। तुमने मुझे ठेस दी,

पीड़ा पहुँचाई, शायद जान-बूझकर। लेकिन तुम्हें यह जानना चाहिये था कि जो कुछ तुम मुझसे कहना चाहते थे, जो कुछ तुम मुझसे कराना चाहते थे, उसके लिये मुलायम और स्नेह-भरे शब्दों की कमी नहीं थी। रमेश, तुमने मेरे साथ अन्याय किया है और नारी-हृदय—दुर्बल, भावुक नारी-हृदय के साथ ज़ुल्म किया है। लेकिन जानते हो दुर्बल व्यक्ति की प्रतिहिंसा में कितना ज़ोर, कितना बल होता है! लेकिन ग़लत फ़हमी में मत पड़ो। मैं बदला देने की कल्पना भी नहीं कर सकती। मैं तो तुम्हारी हूँ, और तुम्हारी ही रहूँगी। हाँ, इतना ज़रूर कहूँगी कि तुम जो काम मुझसे आसानी से करा सकते हो उसके लिये कड़े शब्दों को इस्तेमाल करके अपनी ज़बान ख़राब मत किया करो और साथ ही मुझे ठेस भी मत पहुँचाया करो।"

रेखा के इन शब्दों के लिये रमेश तैयार नहीं था। उसे आश्चर्य हुआ। रेखा ने कभी भी इस तरह अपने मन के भावों को रमेश के सामने नहीं रखा था। रमेश गंभीर हो गया। मन तो डर रहा था, लेकिन रेखा के इन शब्दों ने उसे और भी कठोर बना दिया था।

"ठीक है, जो कुछ तुम कहती हो वह सब ठीक है, फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे जीवन को अपने हाथों में लेकर उससे खेलना क्या अच्छी बात है! रेखा, तुमने मेरे जैसे कायर और कमज़ोर व्यक्ति पर अपनी सत्ता अच्छी तरह से जमा ली है। अब मैं तुमसे अलग नहीं हो सकता। इस बात को तुम जानती हो और शायद इसीलिये तुम ऐसी बातें कह रही हो। सोचो तो ज़रा, मैंने तुम्हें कौन-सी कठोर बात उस दिन कही थी! क्या यह सच नहीं है कि तुम्हें मेरी तो फ़िक्र है लेकिन मेरे स्नेही सम्बन्धियों की तुम्हें परवाह नहीं है। मैं जो कुछ हूँ उन्हीं लोगों का बनाया हुआ हूँ। तुम मुझसे स्नेह कर सकती हो लेकिन मेरे बनाने वालों के साथ तुमको ज़रा भी सहानुभूति नहीं। प्रेम, मेरा प्रेम आज जेल की दीवारों के पीछे न मालूम कितनी यातनायें सह रहा होगा। उसके लिये तुम्हारे दिल में बिल्कुल दर्द नहीं। मेरी समझ में

यह संकुचित दृष्टिकोण और विचारधारा तुम स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है। जो हो, मुझे इसकी परवाह नहीं। मैं तो अब अपना रास्ता बदलने जा रहा हूँ। अपनी आँखों से एक व्यक्ति विशेष के मोह का पर्दा हटा कर उस दुनिया में जा रहा हूँ जिसमें रहने वालों की छाती चौड़ी होती है और जो एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखते हैं। मैंने प्रेम के रास्ते पर चलने का निश्चय कर लिया है। समझीं।"

रमेश के ये नपे-तुले शब्द रेखा को तीर की तरह लगे। रेखा भी इस इस प्रकार की बातों के लिये तैयार नहीं थी। बोल उठी, "जाओ न, तुम्हें रोका किसने है? मैं तुम्हें बुलाने गई थी जो तुम यहाँ आकर बार-बार हाज़िरी देने लगे? जानते हो, मेरे दरवाज़े पर तुम जैसे कितने ही लोग आये और टक्कर मार कर चले गये। लेकिन उनकी दाल नहीं गली। तुम मेरी कमज़ोरी का फ़ायदा उठाना चाहते हो। अगर मैं तुम्हारे ऊपर जान दे सकती हूँ तो तुम्हें भूल भी सकती हूँ। एक हफ्ते नहीं आये तो मेरी जान नहीं निकल गई। अब भी न आते तो मैं तुम्हें बुलाने न जाती। मैं अगर प्रेम की लहरों में किल्लोल करना जानती हूँ तो दुख के समुद्र में डूब जाना भी जानती हूँ। रमेश बाबू, इसे समझ लो कि मैं तुम्हारे बग़ैर ज़िन्दा रह सकती हूँ। तुम जाओ, परोपकार करो और जेल काटो, मेरी जान छोड़ दो। मुझे अपनी ज़िन्दगी के दिन एकान्त में, सबसे दूर ही काटने दो। मेरे ऊपर रहम करो।" रमेश चुप रहा। तिलमिला तो गया था लेकिन कुछ बोल नहीं सका। रेखा कहती गई, "और सुनो, अब मेरे पास आने की तकलीफ़ मत करना। क्यों मुझ स्वार्थी, पतिता वेश्या के पास आकर समाज की आँखों के ख़ार बनोगे और अपने कर्तव्य से दूर होगे।"

रेखा चुप हुई तो उसके नथुने फूल उठे थे। निचला ओठ सिकुड़ कर काँप रहा था। रेखा चुप बैठी रही। उसने रमेश की तरफ़ आँख नहीं उठाई।

लेकिन रमेश का हाल बुरा था। रेखा के ये शब्द हथौड़े की तरह उसके दिल पर पड़ रहे थे ! उसने कभी भी यह नहीं सोचा था कि रेखा इतनी कड़ाई और रुखाई के साथ बात कर सकेगी। रमेश ने सोचा वह हाथ जोड़ कर रेखा से क्षमा माँग ले। लेकिन उसके स्वाभिमान ने चाबुक की चोट खाई थी। कोमल शब्दों का प्रयोग करने की प्रबल इच्छा रखते हुये भी रमेश कड़ुवे शब्द ही बोल सका।

"अच्छी बात है, जैसा तुम समझो, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तो तुमसे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं रखता था। लेकिन अगर तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे दरवाज़े अब न आऊँ तो ऐसा ही होगा। मैं तुम्हारे यहाँ अब न आऊँगा। तुम भी मुझे भूलने की कोशिश करना।"

"और क्या, याद रखने की कोशिश करूँगी। जिसने मेरा दिल लिया, जिसने मुझसे मेरा पेशा छुड़ाया, मेरी रोटी तक छीनी उसे अब क्या याद करूँगी ? अच्छा हुआ तुम इतनी जल्दी खुल गये।"

"मैंने तुम्हारी रोटी छीनी, तुम्हारा पेशा छुड़ाया ? सच कहती हो तुम ! मेरी इज़्ज़त आबरू किसके क़दमों पर निसार हुई ! मेरी ज़िन्दगी किससे हाथों वक़्फ़ हो गई थी। मेरे भविष्य का ठीकेदार कौन बना था ?"

"मैं, रेखा, वेश्या रेखा, जिसका यही पेशा है, यही शेवा है, यही काम है !"

"फिर तुम मुझे क्यों दोष देती हो ?"

"इसलिये कि वेश्यायें दूसरों को बर्बाद करती हैं, ख़ुद बर्बाद नहीं होतीं। मगर तुमने मुझे बर्बाद कर दिया, मेरा पेशा छुड़ा दिया, मेरे यहाँ आने-जाने वाले सब के सब नाराज़ होकर चले गये। मुझे तुमसे फ़ुर्सत कहाँ मिलती थी कि दूसरों की तरफ़ ध्यान देती ? लेकिन मैंने कितनी बड़ी बेवकूफ़ी की, इसका पता मुझे अब चला है। रमेश बाबू, औरतों का दिल बहुत कमज़ोर होता है। उसके साथ ऐसा व्यवहार करना आपको शोभा नहीं देता। आख़िरकार आप मर्द हैं। मुझ जैसी औरतें शायद आपको बहुत मिल जायेंगी, लेकिन आप जैसा मर्द·····

नहीं, नहीं, बहुत हैं इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में। अब मुझे आप छुट्टी दीजिये। मेरी अँगूठी वापस कर दीजिये।"

"नहीं, मैं अँगूठी वापस नहीं करूँगा।" रमेश पिघल रहा था, "यह अँगूठी अब तुम्हारी नहीं है। यह तो मेरी हो चुकी है।"

"इसे आपको वापस करना पड़ेगा। इसकी जगह आप चार अँगूठियाँ मुझसे ले सकते हैं।"

"ऐसा क्यों? इसे रहने दो न मेरे पास।" रमेश विनीत भाव से बोला।

"नहीं, इस अँगूठी में मेरी राम-कहानी छिपी है। मैं आज तक की अपनी ज़िन्दगी को भुलाना चाहती हूँ। इस अँगूठी को कुचल कर चूर कर देना चाहती हूँ। मैं अपने हाँथों अपने कल्पना के घरौंदे को तोड़ डालना चाहती हूँ। रमेश बाबू, आपसे मैं यह भीख माँगती हूँ। आप मुझे मेरी थाती वापस कर दीजिये।"

रमेश ने काँपते हुये उँगली से अँगूठी निकाली और रेखा के हाथ में धर दिया। उसकी धड़कन बढ़ गई थी। कुछ बोला नहीं, चुपचाप उठा और बाहर की ओर चल दिया।

"क्या अब जा रहे हो?" रेखा ने पूछा।

"हाँ" रमेश ने दृढ़ता और रुखाई से जवाब दिया और सर नीचा किये हुये सीढ़ी की तरफ़ बढ़ गया।

रेखा की, भावहीन, आँखें, स्थिर, अडोल उसे देखती रह गईं।

रमेश नीचे उतरा तो हवा के ठंढे झोंके ने उसे कँपा दिया। वह डर सा गया। नीरव रजनी की निस्तब्धता उसे खाने दौड़ी आ रही थी। फ्लेक्स पम्प की चरमराहट उसे अखरती थी। वह शान्ति चाहता था, लेकिन उसके मनमें तूफ़ान उठा हुआ था। मरा सा, पिटा सा, निराश, असफल रमेश धीरे-धीरे अपने बँगले की ओर बढ़ता गया। रास्ते में निराशा भरी अपनी कविता की ये पँक्तिया वह धीरे-धीरे गुनगुनता रहा :

"रूप क्या, लावण्य क्या, शृँगार क्या, अभिसार कैसा ?
क्षणिक जीवन, क्षणिक यौवन, फिर प्रणय व्यापार कैसा ?
स्मृति-पटल पर खिंच गई थी एक रेखा, मिट गई वह,
वहन कैसे हो सकेगा आज विस्मृति-भार दुर्वह !"

रमेश चला गया तो रेखा वहीं चादर पर लेट गई। आसमान के झिल-मिल तारों से उसे कोई सहारा नहीं मिला। चाँद भी मुख मोड़ने लगा। तकिये में सर गड़ा कर रेखा फूट पड़ी। आवाज़ सुनकर बुद्धू दौड़ आया।

"यह क्या बाई जी ? आप ऐसे क्यों पड़ी हैं ? क्या बाबू जी ने कुछ कह दिया ? आप भी क्या उस मक्कार नौ जवान के चक्कर में अपनी जान दे रही हैं !" बुद्धू ने सहानुभूति दिखलाते हुये कहा।

"जाओ बुद्धू, दरवाज़ा बन्द कर दो, रोशनी बुझा दो। मैं यहीं पड़ी रहूँगी, जाओ।" बुद्धू को हटाने के लिये रेखा ने कहा। उसे बुद्धू के शब्द बहुत अखरे थे। लेकिन वह बुद्धू को डाँट न सकी। वह अभी और रोना चाहती थी, जी भरकर, खुलकर। बुद्धू बाधक हो रहा था, इसलिये उसे जल्दी हटा देना ज़रूरी था।

घर पहुँच कर लाइट जलाई तो मेज पर रखी हुई रेखा की तसवीर पर रमेशकी निगाह पड़ गई। वह तिलमिला उठा—'वेश्या, धूर्त, निरीह, स्वार्थी, नारी' रमेश बड़बड़ाने लगा। आवेश में उसने रेखा की तसवीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। ज़मीन पर पड़े टुकड़ों को वह बहुत देर तक घूर कर देखता रहा। सहसा उसके भाव बदल गये। उसकी आँखों में आँसू आ गया। 'यह मैंने क्या किया ! अपने ही हाथों रेखा के चित्र की यह दुर्दशा मैंने क्यों की ! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये था।' रमेश ने एक-एक करके काँच के टुकड़ों को बटोर लिया। एक छोटा टुकड़ा रेखा के ओठ में गड़ गया था। उसे निकालते समय रमेश सिहर गया !

वाहर आसमान साफ़ था। रमेश आराम कुर्सी निकाल कर बैठ गया। विचार संघर्ष से उसकी आँखों की नींद गायब हो गई थी। बाह्य प्रकृति के सौंदर्य का आनन्द लेने की क्षमता उसमें नहीं रह गई थी। अपने विचारों में डूबा वह सोचता रहा। यह सब क्या हुआ? क्यों हुआ? कैसे हुआ? 'मैंने उस दिन रेखा के लिये तिरस्कार के शब्दों का प्रयोग किया। इसी का यह नतीजा है। नारी हृदय सहिष्णु और क्षमा-शील होता है। वह सब कुछ सह लेगा, लेकिन तिरस्कार, वह भी अपने प्रियतम से—इसे बर्दाश्त कर सकना उसके लिये असम्भव है!'

सबेरा होने के पहिले ज़रा-सा अँधेरा होता है। फिर प्राची दिशा में, लालिमा की आभा फैलने लगती है। चिड़ियों के चहकने और कलियों के चटख़ने के बीच पूरबी क्षितिज पर स्वर्ण रश्मियाँ बिखरने लगती हैं। वृक्ष, पौदे, फूल सभी सिहर उठते हैं।

रमेश अपनी कुर्सी में विचार निमग्न पड़ा था। कोयल कूकी तो उसकी तन्द्रा टूटी। उसने देखा सबेरा हो रहा है। चारों ओर नवजीवन का वातावरण है। कलियाँ चटख़ रही हैं, फूल खिल रहे हैं। गन्ध पराग से लदी प्रातः समीरण मदमाती चली जा रही है। लेकिन उसका दिल बैठा जा रहा है। जिसके सहारे आज तक जीता रहा वही सम्बल छूट गया, जिसके सहारे भविष्य के कल्पित जीवन का निर्वाह होगा वह अपने से दूर, ऊँची दीवारों और मोटे जँगलों के पीछे बन्दी बना बैठा है। हवा भी उसे छू कर बाहर नहीं आ सकती। अतीत की स्मृतियों को भूलने के लिये वह मजबूर था, भविष्य की कल्पनायें साकार रूप कैसे लेंगी, इसी की उसे चिन्ता थी। रमेश रात के पिछले पहर तक यही सोचता रहा। सोचते-सोचते सबेरा हो गया। वह आँख मल कर उठा, अँगड़ाई ली और कमरे में चला गया!

कमरे में रमेश टहलता रहा। वह कुछ खोया-खोया-सा मालूम पड़ रहा था। बुद्धू ने जब आवाज़ दी, "बाबू जी सलाम, बड़ी मुश्किल से आपका बँगला मिला", तो रमेश चौंक पड़ा। बुद्धू को देखकर वह

घबरा गया, 'यह कौन-सी ख़बर लाया ? अब और क्या होने वाला है !'

"बाबू जी, तबियत तो ठीक है ! आप इतने उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं ?" बुद्धू ने स्नेह से पूछा।

"हाँ, सब ठीक है, ज़रा योंही रात नींद नहीं आई, इसीलिये थकावट मालूम पड़ती है। और कोई बात नहीं।"

"कुछ समझ में नहीं आता बाबू साहब, हमारी बाई जी को क्या हो गया है। रात भर छत पर पड़ी रोती रही हैं। पिछले सात-आठ दिन से उनका यही हाल है। मुझे तो डर लगता है कि अगर यही हाल रहा तो न मालूम क्या होगा। बाबू जी आप उनके लिये कुछ कीजिये।"

"बोलो बुद्धू, तुम्हीं बताओ, मैं क्या कर सकता हूँ ! मैंने तो उन्हें कुछ कहा नहीं, योंही नाराज़ हो गईं। उस दिन मेरा साथी गिरफ़्तार हो गया। उसी सिलसिले में बात-चीत हो रही थी। योंही ज़रा-सी बात में बिगड़ गईं। मैंने सिर्फ़ यह कहा था कि औरतें स्वार्थी होती हैं। यही बात उन्हें लग गई। तुम जानते हो, मैं उन पर जान देता हूँ। और भी तो मर्द हैं। लेकिन सभी हर तरफ़ हाथ मारा करते हैं। मैंने सिर्फ़ तुम्हारी बाई जी से दिल लगाया। और अब भी उन्हीं को अपना सब कुछ समझता हूँ, लेकिन उन्होंने मुझे बेइज़्ज़त किया, बेजा जुर्म लगाया और अब हुक्म दे दिया कि मैं उनके घर कभी न जाऊँ।"

"लेकिन कम उम्र बाई जी की बातों को बुरा नहीं मानना चाहिये। योंही तैश में कह दिया होगा। आप इन बातों को भूल जायँ। इन में धरा ही क्या है। आप चलकर उनकी तबियत ठीक कीजिये।"

"यह मेरे बस की बात नहीं। जिस जगह से मैं यों बेइज़्ज़ती के साथ निकाला गया, वहाँ अब फिर वापस जाना मेरे लिये नामुमकिन है।"

"मोहब्बत की राह में बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं बाबू साहब ! अभी आपको तजुर्बा नहीं है, इन्हीं बाईजी के लिये कितने रईसज़ादे टक्कर मार कर चले गये। लेकिन बाई जी किसी के हाँथ नहीं आईं। न मालूम

कौन-सा जादू चला दिया आपने कि वह आपही पर जान देती हैं। आप उन्हें ठुकराते हैं वह आपका दामन छोड़ना नहीं चाहतीं। अजब हाल है। बाबू जी, मैं बाई जी का ख़ादिम हूँ और आपका भी। अपनी आँखों से उनकी यह हालत देखी नहीं जाती। रात भर मुझे भी नींद नहीं आई। इसीलिये सवेरे ही आपके पास भागा आया। उनसे तो मैं कुछ कह नहीं सकता। लेकिन आप तो समझदार, इल्मदार, नौजवान हैं। आप चाहें तो उन्हें उनका सुख-आराम फिर वापस मिल सकता है। वरना यों ही घुट-घुट कर जान दे देंगी। आप चाहें तो सब कुछ हो सकता है।"

"अच्छा बताओ, मैं क्या करूँ। उनके यहाँ मैं अब जा नहीं सकता। मेरे घर उनका आना नामुमकिन है। मैं माफ़ी माँगने के लिये तैय्यार हूँ, लेकिन उनसे मुलाक़ात कैसे हो सकती है। तुम बाई जी को शाम को गोमती के किनारे लाओ। उनसे यह मत बताना कि मैं वहाँ रहूँगा वरना वह आयेंगी नहीं। बाद में मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"साहब, मुझे तो यह काम मुश्किल मालूम पड़ता है। बाई जी मुझसे बोलतीं तक नहीं। मेरे साथ गोमती जाने के लिये वह कभी भी राज़ी नहीं होंगी। आप ख़ुद अपना क़दम वापस ले लें, अपनी ज़िद छोड़ दें। अब की बार बाई जी की ही जीत सही।"

"नहीं बुद्धू, यह नहीं होने का। यह मामला इज़्जत का है। मुझसे लाख नराज़ होकर बिगड़ लेतीं लेकिन यह कहने की क्या ज़रूरत थी कि मेरे घर मत आना। जब उन्होंने साफ़-साफ़ मुझसे मना कर दिया तो अब मैं उनके घर नहीं जा सकता। जिसे तुम ज़िद कहते हो वह मेरी आन की बात है।"

"तो मैं नाउम्मीद हो जाऊँ।"

"मजबूरी है, मैं कर ही क्या सकता हूँ?"

"अच्छा तो इजाज़त दीजिये मैं जाता हूँ और यह कहे जाता हूँ कि आप बाई जी के लिये ही नहीं अपने लिये भी बहुत

बुरा कर रहे हैं। अपनी नातजर्बेकारी में कहीं आप पर और भी आफ़त न आ जाये। मुझे तो अगले दिन ख़तरनाक दिखाई पड़ते हैं। अच्छा, सलाम।"

"सलाम, बाई जी का हाल कभी-कभी दे दिया करना।"

"जो हुक्म, बाबू जी।"

बुद्धू चला गया। रमेश की निराशा और भी घनी हो गई। धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। रेखा और रमेश में अब जैसे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया। बीच में बुद्धू एक दो बार और आया। लेकिन रमेश रेखा के पास नहीं गया। रेखा के आने का सवाल ही नहीं उठता था। पहिले तो रेखा बुद्धू के बताये हाल को भी सुन लिया करती थी, लेकिन अब उसमें उसकी उत्सुकता नहीं रह गई। ऐसा लगता था कि एक दूसरे को दोनों भूलने लगे हैं और अगर यह क्रम कुछ दिन और चला तो शायद दोनों एकदम पराये हो जायेंगे जैसे उनमें कभी कोई जान पहिचान ही नहीं थी।

बुद्धू इन दोनों की दशा को देख मन ही मन दुखी होता था, लेकिन वह कर ही क्या सकता था? उसकी सारी कोशिशें बेकार हो चुकी थीं।

* * *

"कहो नम्बरदार क्या बात है? कैसे चले?" प्रेम, नम्बरदार को अपनी ओर आते हुये देखकर बोला।

"बाबू जी, आपको आज कचहरी जाना है, वारंट आया है। छोटे बाबू ने कहलवाया है। आप खाना खाकर तैय्यार रहियेगा। दस बजे पुलिस की लारी आपको ले जायेगी।" नम्बरदार बोला।

प्रेम कुछ देर तक सोचता रहा। नम्बरदार से अच्छा कह दिया लेकिन खुद कुछ समझ न सका। कचहरी क्यों जाना होगा? क्या केस

चलायेंगे ? कामरेड शरीफ़ से पूछा, "भाई, क्या बात है अभी नम्बरदार आया था, कह गया दस बजे कोर्ट जाना है. क्या मुक़दमा चलायेंगे ?"

"हो सकता है ।" कामरेड शरीफ़ ने गंभीर होकर कहा ।

"अगर मुक़दमा ही चलाना था तो १२६ में क्यों गिरफ़्तार किया ? दफ़ा ३८ तो थी ही इनके पास ।" प्रेम ने पूछा ।

"उस वक्त सबूत वग़ैरह इकट्ठा न रहा होगा । पुलिस का क्या ? कुछ न मिला तो १२६ तो है ही । जब सबूत वग़ैरह इकट्ठा कर लिया, तो मुक़दमा चला दिया ।"

"लेकिन मुक़दमा चलायेंगे किस बात का ? मेरे ख़िलाफ़ उनको शिकायत ही क्या हो सकती है । मैंने कोई ऐसा ख़ास लेक्चर वग़ैर भी नहीं दिया ।"

"सो तो ठीक ही है । लेकिन क्या यह ज़रूरी है कि जो कुछ तुम कहो उसी के लिये मुक़दमा चले ?"

"तो, जो न कहे उसके लिये भी मुक़दमा चलता है ?"

"आम तौर से सियासी मुक़दमें इसीलिये चलते हैं कि उनके चलानेवाले उसे चलाना चाहते हैं । गवाह सबूत की क्या कमी है ?" कामरेड शरीफ़ मुस्कराते हुये बोले । उस मुस्कान में घृणा का पुट था ।

"अच्छा तो अब तैय्यारी कर लेनी चाहिये ।"

दो घंटे बाद नम्बरदार आ गया । "बाबूजी चलिये मोटर आ गई । बिस्तर भी लेते चलिये, छोटे बाबू ने कहा है ।" नम्बरदार ने कहा ।

"क्यों, बिस्तर का वहाँ क्या होगा ?"

"कुछ पता नहीं, शायद वहीं से आप को सेन्ट्रल जेल भेज दें । फ़ैसला भी तो आज ही हो सकता है ।"

प्रेम परेशान हो गया । यह क्या तमाशा है ? अभी दो घंटे पहिले मुक़दमें की ख़बर आई थी । 'मैं कोर्ट पहुंचा भी नहीं इधर फ़ैसले

की भी ख़बर आ गई। यह सब क्या गोरखधन्धा है ! मेरी ओर से भी कुछ पैरवी होगी, गवाह आयेंगे, सफ़ाई दी जायेगी या योंही एक तरफ़ा फ़ैसला देने का इरादा है !'

कामरेड शरीफ़, गुप्ता, सिन्हा, सभी बिस्तर वग़ैरह ठीक करने में लग गये। प्रेम चलने लगा तो सभी को ऐसा लगा मानो वे एक दूसरे से अब जल्दी नहीं मिल सकेंगे। इस भावना के लिये पर्याप्त कारण तो नहीं थे, फिर भी सब को लग ऐसा ही रहा था। चलते हुये प्रेम ने कहा, "देखें कब मिलते हैं !"

"क्यों, जल्दी मिलेंगे। मुझे तो यक़ीन है कि तुम शाम तक फिर वापस आ आओगे। जेल वाले योंही बेपर की उड़ाया करते हैं।" कामरेड शरीफ़ ने कहा।

"हमें आशा तो ऐसी ही करनी चाहिये।" कामरेड सिन्हा बोले।

"अच्छी बात है, जाओ दोस्त बाहर की कुछ ख़बर लाना। अपने कामरेड तो शायद आयेंगे।" कामरेड गुप्ता ने कहा।

"देखिये, अगर वापस आया तो कुछ न कुछ ख़बर लाऊँगा ही", कहते हुये प्रेम ने लाल सलाम किया और अरगले के बाहर हो गया।

कोर्ट में पहुँचने के पहिले प्रेम को दो नये अनुभव हुये। जेल के फाटक से निकलने के पहिले उसे हथकड़ी पहिनाई गई। प्रेम पहिले तो झिझका, फिर ग़ुस्से के बजाय उसे हँसी आ गई। यह बन्धन नहीं बन्धन का मज़ाक़ था। 'अगर मुझे इन चीज़ों से घबराहट होती तो मैं राजनीति को अपना पेशा ही क्यों बनाता ?' प्रेम ने सोचा। फिर इतने सिपाहियों के रहते हुये क्या मैं भाग निकलूँगा ? इतनी तो इन्हें समझ होनी चाहिये। लेकिन ऐसा सोचना प्रेम की ग़लती थी। हथकड़ी सिर्फ़ इसलिये नहीं पहिनाई गई थी कि हुक्म की पाबन्दी करनी थी, बल्कि इसलिये भी कि पहिनाने वालों के पिछले तजरबे बहुत मीठे नहीं थे। दूध का जला छाँछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है।

'लाक अप' में पहुँचा तो उसे एक ऐसी कोठरी में बन्द किया गया जो गन्दी, छोटी और अँधेरी थी। ८ फ़िट चौड़ी, १४ फ़िट लम्बी कोठरी, पेशाब, पाखाने के बदबूदार गन्दे गमले भी उसी में रखे हुये थे। ऊपर छत से लगी हुई छोटी सी खिड़की थी, जिस पर चिड़ियाँ तो बीट करती थीं, लेकिन उससे हवा के भीतर आने की आशा करना दुराशामात्र थी। कई घंटे तक प्रेम इसी कोठरी में ज़मीन पर बैठा अपनी 'पुकार' की इन्तज़ार करता रहा।

कचहरी में भीड़ ज़्यादा थी। कुलियों का ताँता लग गया था। आज कामरेड की तारीख़ है इसे वे जानते थे। अन्दर प्रेमको कुछ ख़बर नहीं थी, लेकिन बाहर वालों ने काफ़ी इन्तज़ाम किया था। वकील का कहना था कि मुक़दमें में कुछ नहीं रखा है, जीत हो जायेगी। मि० वर्मा या मि०लुई कोई भी नहीं आये थे। उनके लिये हथकड़ियों में जकड़े हुये बन्दी प्रेम का देख सकना मुश्किल था। भरी कचहरी में अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर नहीं करना चाहते थे। इससे प्रेम की तबियत में भी तो कमज़ोरी आती। गिरफ़ार हो गया प्रेम तो क्या हुआ! अब उसे अपना दिल मज़बूत करके सब कुछ बर्दाश्त कर लेना चाहिये। उसकी कमज़ोरी से ख़ान्दान की बदनामी होगी और उन लोगों का सर झुकेगा!

कुलियों की भीड़ में सोना को खोज लेना मुश्किल नहीं था। गठीले बदन वाली नव-यौवना तरुणी सोना अपनी अस्मत को अपने फटे पुराने कपड़ों में छिपाये,सिकुड़ी-सी, भीड़ में एक तरफ़ खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू नहीं था। ओठों में कम्पन नहीं था, दिल धड़क रहा था, लेकिन सोना उसे दबाने की कोशिश कर रही थी। चुप-चाप सर नीचा किये दाहिने पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदती रही।

रुपन और रज्जन साथ ही थे। इन्तज़ार कर रहे थे कि कामरेड प्रेम आवें तो उन्हें आँख भर देख लें। 'लाक अप' में मिलने की कोशिश की, पान-पत्ते का भी वादा किया लेकिन मौक़ा नहीं लग सका। कचहरी

के एक कोने में आकर खड़े हो गये। साथ में रम्मू, बशीर, नज़ीर वग़ैरह भी खड़े थे। चारो तरफ़ सन्नाटा था।

लुई और रमेश साथ ही आये और वकीलों के पास एक बेंच पर बैठे रहे। कुलियों ने इन्हें पहचाना नहीं, सोचा होंगे कोई। ये लोग भी चुपचाप बैठे रहे। लुई कभी-कभी वकील साहब से एक दो बात कर लेती, फिर चुप हो जाती। वह बहुत गंभीर और अचल थी। चेहरे से दृढ़ता और बेपरवाही टपक रही थी। जैसे, कुछ भी हो उसको चिन्ता नहीं। वह चीज़ के लिये तैय्यार है।

रमेश के मन में विचारों का बवण्डर उठ रहा था। क्या प्रेम छूट जायेगा ? उसे ऐसा लगा कि वकील साहब चाहे कुछ भी कहें प्रेम का छूटना मुश्किल है। अगर छोड़ना होता तो मुक़दमा ही क्यों चलाते ? देखें क्या होता है ? जो भी हो, प्रेम को सज़ा मिल जायेगी और क्या होगा ? मुझे परवाह नहीं। मैं अब पीछे नहीं हटूँगा। मैंने अपना रास्ता चुन लिया—प्रेम मेरा मार्ग प्रदर्शक है।

मैजिस्ट्रेट के आते ही सब लोग उठकर खड़े हो गये। अब मुक़दमें का काम शुरू हुआ। प्रेम को बताया गया कि कुली युनियन की हड़ताल के सम्बन्ध में उसने ऐसी स्पीचें दी हैं जो दफ़ा ३८ भारत-रक्षा क़ानून में आ जाती हैं, इसीलिये उसके ऊपर मुक़दमा चल रहा है। मैजिस्ट्रेट ने पूछा, "मिस्टर प्रेम, आप जुर्म क़बूल करते हैं ?" प्रेम ने कहा, "नहीं महोदय।" तब सरकारी गवाह सामने आये। उनकी गवाही ख़त्म हुई, सरकारी वकील भी बीच-बीच में बोलता रहा। बाद में प्रेम के पक्ष के कुली गवाह आये। उनकी गवाही के बाद सब को विश्वास हो गया कि अब मुक़दमा कामरेड के खिलाफ़ नहीं जा सकता। जिरह समाप्त हुई और लंच के लिये मैजिस्ट्रेट साहब अन्दर गये।

थोड़ी देर बाद मैजिस्ट्रेट साहब एक लम्बा फ़ैसला लेकर बाहर आये। सभी को आश्चर्य हुआ कि इतने कम समय में इतना लम्बा

फ़ैसला कैसे तैयार हो गया। फ़ैसला सुनने के लिये धड़कते हुये दिलों से सभी इन्तज़ार कर रहे थे। रमेश प्रेम की ओर श्रद्धा भरी आँखों से एकटक देख रहा था। लुई का चेहरा लाल था। वह चुप बैठी रही। सोना की मुखाकृति बदल रही थी, रंग आते और चले जाते। रज्जन, रुपन सभी उदास थे। बेचारे वकील साहब कुछ तय नहीं कर सके। हमारे गवाहों के बयान तो अच्छे हुये, जिरह भी अच्छी हुई, देखें क्या होता है।

"मुझे अफ़सोस है, मिस्टर प्रेम, जुर्म आपके ऊपर साबित हो गया, इसलिये दुख के साथ मुझे आपको डेढ़ साल की सख़्त सज़ा देनी पड़ती है।" मैजिस्ट्रेट ने थोड़े में प्रेम की तरफ़ आँखें गड़ा कर कहा "आपको यह सज़ा मिसाल के तौर पर दी जाती है जिससे और लोग भी सजग हो जाँय और क़ानून तथा सुव्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने की हिम्मत न करें। आपको जेल में बी० क्लास में रखा जायेगा।"

"धन्यवाद, मैजिस्ट्रेट महोदय।" प्रेम ने इससे ज़्यादा और कुछ नहीं कहा।

फ़ैसला हो गया। वकील साहब का चेहरा उतर गया, चुप-चाप उठे और कोर्ट के बाहर हो गये। सभी लोग उठने लगे।

"मैजिस्ट्रेट महोदय, क्या आप कृपा करके मुझे अपने स्नेही, सम्बन्धियों से बात-चीत कर लेने के लिये दस मिनट की इजाज़त दे सकेंगे?" प्रेम ने पूछा।

"हाँ, आप बात कर सकते हैं।" मैजिस्ट्रेट ने कहा।

लुई, रमेश, सोना, रुपन, रज्जन, बशीर, नज़ीर, रम्मू सभी आकर प्रेम के पास खड़े हो गये। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती थी।

"रम्मू, सोना का ख़्याल रखना। अब उसे डाँटना मारना मत। बड़े भाग्य से तुम्हें सोना ऐसी स्त्री मिली है। सोना बहिन, आज से

रम्मू तुम्हारा ध्यान रखेंगे। अब तुम्हें तकलीफ़ नहीं होगी। और देखो रम्मू, तुम्हारे बाबा बहुत बूढ़े हो गये, माई को भी कम दिखाई पड़ता है। इन दोनों को अपने पास रखो, जिससे बुढ़ौती में इन्हें तकलीफ़ न हो। युनियन का ख़्याल रखना।" दूसरे कुलियों की तरफ़ देखकर कामरेड प्रेम ने कहा, "साथियो मैं तो जा रहा हूँ, लेकिन युनियन का काम चलाते रहना। झण्डा झुकने न पावे।"

"ऐसा ही होगा कामरेड, आप इत्मीनान से जाइये", सभी कुली एक स्वर में बोल उठे।

"लुई, तुम्हारा साथ रमेश हमेशा देगा। क्यों रमेश ?"

"हाँ।" रमेश और कुछ न कह सका।

"रमेश और तुम दोनों पापाओं को सुखी रखना। पार्टी का काम करती रहना। अच्छा जाओ।"

"और मैं, मेरे लिये भी आप कुछ कहे जाइये।" सबका ध्यान इस महीन, सुरीली आवाज़ की तरफ़ खिंच गया। "आप शायद मुझे नहीं जानते। मैं रेखा हूँ। आपका आदेश लेने आई हूँ। सब ने मेरा तिरस्कार किया। लेकिन आप अपना समझ कर मुझे भी कुछ कहे जाइये।"

प्रेम कुछ झिझका, फिर सँभल गया।

"रमेश, तुम रेखा रानी का ध्यान रखना। लुई, तुम रमेश और रेखा दोनों की देख भाल करना। रेखा बहिन, मुझे माफ़ करना। मैं इस समय क्या कहूँ ? रमेश के रास्ते पर चल सको तो अच्छा है।" प्रेम जल्दी-जल्दी कह गया।

"आप की जो आज्ञा।" कह कर रेखा ने रमेश का हाथ अपने हाथ में ले लिया। रमेश कुछ न कह सका।

लुई ने प्रेम की ओर देखा, फिर रमेश और रेखा की ओर।

पुलिस के सिपाही ने कहा, "अच्छा साहब, चलिये। वक़्त हो गया।"

"चलो" प्रेम ने कहा। उसने घूम कर एक बार फिर सोना, रुपन, रेखा, लुई, रञ्जन, रमेश आदि की ओर देखा और धीरे-धीरे कोर्ट के बाहर हो गया।

कोर्ट के बाहर निकल कर लुई ने सोना और रेखा को अपनी मोटर में बिठा लिया। रम्मू से इजाज़त माँगते हुये लुई ने कहा, "आपको कोई एतराज़ तो नहीं है।"

"जी नहीं, आप ले जाइये" रम्मू बोला। चलते समय लुई ने सबको लाल सलाम किया। कुलियों ने भी घूँसे बाँध कर जवाब दिया और मोटर चली गई।

८

स्नेह की समीक्षा

"कहो बेटी, क्या हुआ ?" अन्दर आते ही मिस्टर वर्मा ने लुई से पूछा।

"डेढ़ साल की सख्त सज़ा और बी० क्लास।" लुई ने उत्तर दिया।

"प्रेम घबराया तो नहीं ? हिम्मत के साथ सज़ा सुन ली ?" मिस्टर वर्मा शायद यह जानने के लिये ज़्यादा उत्सुक थे।

"आप भी क्या सवाल पूछ रहे हैं मिस्टर वर्मा, मेरा प्रेम कोई ऐसा वैसा लड़का नहीं है !" मिस्टर लुई ने गर्व से कहा, "वह घबरायेगा क्यों ? वह बहादुर है।"

"हाँ, पापा, प्रम बहादुर है। वह डरना नहीं जानता" लुई ने अपनी सर्द आह को ज़ोर से दबाते हुये कहा।

रमेश, रेखा, सोना पास ही कुर्सियों पर बैठे हुये थे। रमेश के लिये 'शंकरविला' नई जगह नहीं थी। लेकिन सोना और रेखा के लिये यह स्थान नया था। सोना सिकुड़ी जा रही थी। उसके कपड़े रद्दी और गन्दे थे। 'शंकरविला' के ड्राइंग रूम के कपड़े ज़्यादा साफ़ और अच्छे थे। सोना ऐसी कुर्सी पर इतने बड़े आदमियों के पास कभी भी नहीं बैठी थी।

मोटर में बैठना तो उसे नहीं अखरा क्योंकि उस समय उसके होश ठिकाने नहीं थे। उसे पता ही नहीं चला कि क्या हो रहा है। यहाँ आकर जब दिमाग़ कुछ ठीक हुआ तो वह घबराई। कहाँ आ गई थी वह ? कहाँ उसकी टूटी-फूटी कोठरी और फटे-सड़े बिछावन, कहाँ ये मख़मली गद्दे और कुर्सियाँ! सोना अपनी कुर्सी में गड़ी जा रही थी।

रेखा के लिये सामान नये नहीं थे। परिस्थिति नई थी। बड़े से बड़े बँगलों में वह जा चुकी थी, इज़्ज़त और सम्मान पा चुकी थी। बड़े-बड़े अफ़सर और सेठ साहूकार उसकी जी हुज़ूरी कर चुके थे। उनकी सतृष्ण आँखें उसे प्यार करने के लिये लालायित रहा करती थीं। लेकिन यहाँ इन दो भव्य पुरुषों को देखकर उसके ऊपर बिल्कुल दूसरा असर पड़ा। वह चाहती थी कि वे लुई की तरह उसे भी 'बेटी' कह दें। वह इन्तज़ार कर रही थी।

"ये कौन बच्चे हैं, लुई," मिस्टर वर्मा बोले।

"इन्हें तो आप जानते ही होंगे! ये हैं प्रेम के दोस्त हमारे रमेश बाबू। प्रेम से इनकी गहरी दोस्ती है। कोर्ट में मुक़दमा देखने गये थे। और, ये रेखा देवी इन्हीं की फ्रेण्ड हैं। प्रेम के त्याग और क़ुर्बानी से आप बहुत ज़्यादा प्रभावित हुई हैं। रास्ते में कह रहीं थीं, 'मैं तो प्रेम बाबू की पूजा करती हूँ। अब मैं उन्हीं के रास्ते पर चलूंगी।' सोना रानी हमारे कुली भाई रम्मू की स्त्री हैं। इनकी वजह से युनियन को बड़ी मदद मिली थी। कोर्ट में अपने कामरेड का फ़ैसला सुनने गई थी तो मैं यहाँ लेती आई। कामरेड प्रेम पर इनकी बड़ी भक्ति है।" लुई ने इसी प्रकार सब का परिचय दिया। "रमेश बाबू, पापा को आप जानते ही होंगे। रेखा देवी, सोना रानी, ये हमारे पापा हैं।"

"बहुत ख़ूब, प्रेम भी क्या ग़ज़ब का लड़का है! मिस्टर वर्मा, देखिये न कितने नौजवानों पर उसका असर है! कमाल है भाई!" मि० लुई बहुत ख़ुश होकर बोले।

"अच्छा इनको कुछ खिलाओ-पिलाओ, थक गये होंगे ये बच्चे, ले जाओ भीतर।" मिस्टर वर्मा ने लुई को अन्दर भेजा और ख़ुद मि० लुई के साथ बँगले के बाहर टहलने चले गये।

जलपान के समय लुई बहुत ख़ुश थी। मन में चाहे जो बीत रहा हो, उसके हाव-भाव, बात-चीत से कोई भी नहीं कह सकता था कि उसे ज़रा भी दुख है। रमेश को चिढ़ाते हुये उसने कहा, "कहिये जनाब, आप तो मर्द हैं न, आप इतने उदास क्यों हैं?"

"नहीं, उदास तो नहीं, बस यों ही जी न जाने कैसा हो रहा है। कुछ समझ में नहीं आता क्या बात है?" रमेश ने ज़रा सजग हो कर कहा।

"जी हाँ, उदास नहीं हैं। हँस रहे हैं आप! लुई बहिन, ये भी मर्द होने का दावा करते हैं। लेकिन दिल औरतों जैसा पाया है। अभी कुछ कह दीजिये तो आँखें डबडबा जायेंगी। वह भी क्या मर्द जो बात-बात में रोता फिरे?" रेखा ने ज़रा जमाते हुये कहा।

"देखिये यह मेरे साथ ज़्यादती है। प्रेम के जाते समय मैं रोया? आप ही बताइये मिस लुई?" रमेश ने पूछा।

"नहीं, उस समय तो आप बिल्कुल गंभीर थे, ज़रा आँखें नीची किये हुये थे। इसीलिये यह ग़लतफ़हमी हो सकती थी कि आप अपने आँसुओं को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं।" लुई ने मुस्कराते हुये कहा।

"यह आपकी ज़्यादती है। आप भी इन्हीं का साथ देती हैं। मैं क़सम खा सकता हूँ कि मैं बिल्कुल नहीं रोया। ये रेखा तो मुझे ऐसे ही चिढ़ाया करती हैं। आप इनकी बातों में न आइये।" रमेश ने अपनी सफ़ाई देते हुये कहा।

"अच्छी बात है। यह मान लिया जाता है कि आप उस वक़्त बिल्कुल नहीं रोये। बड़े बहादुर हैं आप, बस!" रेखा ने कहा।

"इसमें क्या शक? तुम लोगों की तरह हम हमेशा अपनी भावुकता

की बाढ़ में वह नहीं जाते। यह दूसरी बात है कि कभी कोई ऐसी परिस्थिति आ जाय कि आँसू न रुके, तो मैं नहीं कह सकता। वरना आमतौर से यह काम आप ही लोगों का है। ज़रा-ज़रा सी बात पर रोना, हँसना आप महिलाओं का ही शृंगार है।" रमेश ने बदला लिया।

रेखा जवाब देना चाहती थी कि लुई ने बात बदल दी। "अच्छा रेखा देवी, अब अपना पूरा परिचय दीजिये। मैं आपको नज़दीक से जानने के लिये बहुत उत्सुक हूँ।"

"लुई बहिन, मेरा परिचय सुनकर आपको दुख ही होगा। जाने दीजिये। यही जान लीजिये कि मैं आप की एक अभागिन बहिन हूँ और अब आप ही के साथ अपनी ज़िन्दगी बिताना चाहती हूँ।"

रेखा के मनोभाव बदल गये। उसके चेहरे पर करुणा की रेखायें दौड़ गईं। रेखा की आँखों के सामने उसके अपने पिछले इतिहास का सारा चित्र खिंच गया। वह काँप गई। अपने को रोके रहने की पूरी कोशिश रेखा ने की, लेकिन टप्-टप् करके दो बूँद आँसू गिर ही पड़े। रूँधे गले से बोली, "लुई बहिन, इससे ज़्यादा आप मुझसे मत पूछिये।"

रेखा के व्यवहार और बातचीत में यह परिवर्तन इतनी जल्दी हुआ कि लुई कुछ भी समझ नहीं सकी। वह घबरा गई। उसने कोई ऐसे शब्द तो कहे नहीं कि जिनसे रेखा को चोट लगी हो और उसके घाव हरे हो गये हो? लुई असमंजस में पड़ गई। रमेश उस समय उसके आड़े आया।

"देखा न आपने! मैं जो कुछ कह रहा था वह साबित हो गया कि नहीं? अब तो आपको सबूत की ज़रूरत नहीं है। इसको कहते हैं भावुकता!"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं आप के साथ बैठने लायक़ नहीं हूँ। मैं क्या कहूँ! आप इन्हीं से पूछिये। ये मुझे अच्छी तरह जानते

हैं। इनकी मेरी पुरानी जान पहिचान है।" रेखा सिसकते हुये बोली।

रमेश अब कुछ नहीं कह सका। मज़ाक में बात टालकर वह रेखा की व्यथा कम करना चाहता था, लेकिन रेखा के आँसू उमड़े ही आ रहे थे। अब आगे प्रयत्न करना उसकी हिम्मत के बाहर की चीज़ थी। लुई ने देखा, मामला बिगड़ता जा रहा है। सँभल कर बोली, "क्या बात है रेखा बहिन, इस प्रकार आप आँसू ढलकाती जा रही हैं। आप हमारी बहिन होकर हम से ऐसा बर्ताव करती हैं? क्या आप मुझे भी रुलाना चाहती हैं?" लुई की आवाज़ भी भर्रा रही थी।

सोना चुपचाप यह तमाशा देखती रह गई। उसकी समझ ही में नहीं आया कि हँसते ही हँसते इन लोगों को यह क्या हो गया। बेचारी टुकुर-टुकुर इन लोगों को देखती रही।

"जाने दीजिये, आप अपना परिचय मत दीजिये। यही क्या कम है कि आप मेरे रमेश भाई की फ्रेण्ड और मेरी बहिन हैं!" लुई ने बातों को वहीं ख़त्म कर देने के लिये कहा।

"नहीं, लुई बहिन, मैं आपको बताऊँगी! आज मैं अपनी सारी राम कहानी कह कर अपना बोझ हल्का कर लेना चाहती हूँ। आपको यह जान कर दुख होगा कि जिस रेखा को आप अपने पास बिठा कर इतनी मोहब्बत से बातें कर रही हैं, जिसे आपने अपनी बहिन कहा है, वह रेखा, कलंकिनी, पापिनी, पतिता वेश्या है। मेरी खद्दर की साड़ी से शायद आप ग़लतफ़हमी में पड़ गई होंगी। लेकिन यह तो मेरा एक ढोंग है। अपने पाप को छिपाने के लिये ही मैंने यह साड़ी पहिन ली थी। खद्दर के मोटे कपड़े ने मेरी बुराइयों को छिपा लिया, वरना आप मुझे अपनी बहिन क्यों कहतीं!...और ये रमेश बाबू! ये मेरे प्रियतम हैं। बड़े घर के आदमी हैं। न जाने क्यों मुझ पर रीझ पड़े। मुझे तो इन्हें देख कर शर्म मालूम पड़ती है। सच जानो, बहिन, मैंने कितने

घरों और ख़ान्दानों को बर्बाद कर दिया है। रमेश बाबू ने कृपा करके मुझे अपना बना लिया है। अब मैंने अपना पेशा छोड़ दिया है और इन्हीं के साथ अपनी ज़िन्दगी बिता देने का निश्चय कर लिया है। प्रेम बाबू आज इसी का आदेश दे गये हैं। बहिन, मैं वादा करती हूँ कि मैं आप के बताये रास्ते पर चलूँगी और आप ही की होकर रहूँगी......मुझे अब आप अपने पास ही रहने दीजिये...!"

रेखा लुई से लिपट गई। जी भर कर रो लेने के बाद ही उसने सर ऊपर उठाया। उसका बोझ हल्का हो गया था। रमेश भी अपने आँसू पोंछ चुका था। उसे शर्म से ज़्यादा ग्लानि हुई। क्यों न उसने रेखा से पहिले ही समझौता कर लिया? आज लुई के सामने बेचारी को इस तरह रोना तो न पड़ता। रमेश ने घूम कर देखा सोना अपनी आँखें पोंछ रही है। सारी बात उसकी समझ में आ गई थी, लेकिन वह कुछ बोल न सकी।

रेखा चुपचाप रमेश की तरफ़ ताकने लगी। लुई ने रमेश की ओर देखा, जैसे कुछ पूछना चाहती हो। रमेश गड़ा जा रहा था। निर्दोष होते हुये भी उसे ऐसा लगा कि वह दोषी है, पापी है!

अपने हृदय की भावनाओं को व्यक्त करने का सबसे अच्छा साधन अपने आँसू हैं। हर्ष और विषाद दोनों का पता ये खारे बूँद ही देते हैं। इनकी बड़ी क़ीमत है। रेखा, मानिनी रेखा, जिसने रमेश के सामने, अपने प्रियतम के सामने, झुकने से इन्कार कर दिया, आज लुई के सामने स्पष्ट शब्दों में आत्म निवेदन करने से नहीं झिझकी! उसे इस बात का एहसास था कि वह वेश्या है. इसीलिये रमेश उससे प्रेम करते हुये भी उसकी क़द्र नहीं करता था। उसने रमेश को अपना दिल, अपनी लाज, अपनी अस्मत सब कुछ दे दी थी। लेकिन रमेश ने इनकी क़द्र नहीं की और वह हमेशा रेखा को स्वार्थी और संकुचित हृदयवाली मामूली स्त्री ही समझता रहा। रेखा को इसी का क्षोभ था। अपना सब कुछ दे देने पर भी वह रमेश के हृदय में अपने लिये

सम्मानपूर्ण स्थान नहीं बना सकी। रमेश को यह क्यों लगा कि रेखा स्वार्थी है और उसका हृदय संकुचित है ? केवल इसीलिये कि वह वेश्या है। वेश्याओं के पास उदारता कहाँ ? यह विचार रेखा को काट रहा था। रमेश से झगड़ पड़ी, उसको अपने यहाँ आने तक के लिये मना कर दिया, कमरे में या छत पर पड़ी रात-रात भर रोती रही—क्यों ? उसके मन में उलझन और खीझ थी। वह वेश्या तो थी ही। अपने इस नाम को वह कैसे बदल सकती थी ? इसीलिये उसने सोचा कि वह अपने कामों से बता देगी कि वह स्वार्थी, लोलुप, निरीह वेश्या ही नहीं है, उसके अन्दर वे सभी मानवी गुण भी मौजूद हैं जिनकी वजह से स्त्रियाँ आदर और श्रद्धा का पात्र बन सकती हैं। उसने अपना रास्ता इसलिये बदला कि वह रमेश को बता देना चाहती थी कि पुरुष ही अपने रास्ते को नहीं बदल सकते, स्त्रियाँ भी अपनी परिपाटी और परम्परा पर लात मार कर आगे बढ़ सकती हैं ! रेखा की इस भावना में प्रतिहिंसा का पुट था, लेकिन वह रमेश और रेखा दोनों के लिये मंगलकारी हुआ। आज वह अवसर आ गया जब कि वह कह सकती थी कि वह अपने पुराने संस्कारों को छोड़कर आगे बढ़ने जा रही है। उसका रुँधा गला, उसकी भर्राई हुई आवाज़, उसके गर्म-गर्म आँसू, सभी यह बता रहे थे कि वह अपने पिछले जीवन के प्रति कितनी कटु है और उसे बदल देने के लिये उसने कितना दृढ़ निश्चय कर लिया है। रेखा के शब्दों से ज़्यादा अर्थपूर्ण उसके आँसू थे !

रमेश ने रेखा का असली रूप अब देखा। मानिनी रेखा ने आज अपनी सच्ची झाँकी रमेश को दी थी। उसने सोचा वह भाग्यशाली है। रेखा ऐसी स्त्री को पाकर वह सचमुच धन्य है !

लुई एक तमाशाई थी। उसे जीवन में पहिली बार दो प्रेमियों के हृदय के उद्गारों को देखने का मौका मिला था। वह स्वयं प्रेम से मोहब्बत करती थी, लेकिन उसे प्रेम से इस प्रकार झगड़ने और फिर उस झगड़े के कारण रोने का अवसर नहीं मिला था। फिर उसके प्रेम में

वासना का स्थान अभी नहीं था। सरल हृदय तरुण प्रेम लुई के आदर और श्रद्धा का पात्र था, साथ ही स्त्री स्वभाव के अनुसार उस श्रद्धा में आत्मीयता और सानिध्य का रंग चढ़ जाना स्वाभाविक था। प्रेम शरीर से सुन्दर तो था ही, दिल से भी बहुत सुन्दर था। वह अपने उद्‌गारों को बहुत कम बाहर निकलने देता था। फिर भी, अगर उसके स्नेह के शब्द कभी बाहर निकले भी तो वह केवल कुछ व्यक्तियों के लिये। सहज गंभीरता, बातों में मिठास और तर्क तथा दूरदर्शिता, ये प्रेम के स्वाभाविक गुण थे! लुई इन्हीं बातों पर रीझी थी। उसे लगता था कि उसका प्रेम असाधारण तरुण है। उसके ऊपर विश्वास किया जा सकता है। उसके हाथों में अपना हृदय, अपना मस्तिष्क, सब कुछ दिया जा सकता है। वह इनका परिष्कार ही करेगा, कुरूप और असुन्दर नहीं बनायेगा इन्हें।

बालपन का साथ कितना अच्छा होता है। इसमें कितनी सरलता, कितनी मस्ती रहती है! एकाएक किसी से मोहब्बत हो जाय तो उसके टूटने का भी ख़तरा रहता है। जिस वेग से सहसा दो हृदयों का संयोग होता है, ज़रा-सी बात पर उसी वेग से उन्हीं दो हृदयों का वियोग भी हो सकता है। लेकिन धीरे-धीरे करके बढ़ने वाला प्रेम स्थाई और मज़बूत होता है। उसमें झटके लगकर टूट जाने की संभावना कम रहती है। लुई और प्रेम का सम्बन्ध ऐसा ही था। दोनों बालपन के साथी और सहपाठी थे। इनका सम्बन्ध मज़बूत नींव पर बना था। उसमें अलगहदगी और परायेपन की गुञ्जायश नहीं थी।

रमेश भावुक और सरल हृदय का नौजवान था। मनचला था। रेखा से उसका सम्बन्ध हो गया। बड़े घर के लड़के ऐश-आराम, मौज-पानी के ही लिये बने होते हैं। घर में कोई और था ही नहीं। लक्ष्मी की कृपा थी। पानी की तरह धन बहा सकता था। बस, रेखा से स्नेह हो गया। रेखा ने रमेश को लुभा लिया। लेकिन, रमेश में ओछापन नहीं था। अपने दिल को किसी के दर पर बिछा देने के बाद उसे सहसा

बटोर लेना उसकी क्षमता के बाहर की चीज़ थी। रेखा से उसने मुहब्बत की तो की। उसे यों ही किसी मामूली बात के ऊपर हमेशा के लिये छोड़कर किसी दूसरे से दिल लगाना उसके लिये आसान काम नहीं था। वह रेखा के साथ रहा और धीरे-धीरे उसके दिल में रेखा के लिये स्थाई जगह बन गई। रेखा-विहीन जीवन दूभर हो गया।

उधर रेखा, गर्विली, मानिनी स्त्री थी। उसे अपना सब कुछ रमेश के हाथों में दे देने में संकोच नही हुआ। रमेश को अपना पति, स्वामी, प्रियतम जब एक बार उसने मान लिया तो फिर उसका सब कुछ रमेश के लिये प्रस्तुत था। लेकिन एक बात है। तिरस्कार वह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। उसकी कमज़ोरियों को कोई न छुये। कमज़ोरियाँ छिपे हुये घाव हैं। न छुओ तो कोई बात नहीं। लेकिन छूते ही उसमें इतनी पीड़ा होती है. इतना दर्द होता है कि मनुष्य तड़प उठता है। उस तड़पन में करुणा और रुलाई की जगह कम होती है. प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की जगह ज़्यादा। रमेश ने साधारण बातचीत में रेखा का तिरस्कार किया। रेखा तिलमिला उठी। उसने बदला लेने की सोची। उसने बदला लिया भी। आज उसका बदला पूरा हो गया।

इतनी देर में लुई इन सब बातों को समझ गई। उसे अपने और प्रेम के सम्बन्ध का ध्यान इसलिये आया कि वह रमेश और रेखा के सम्बन्ध की रोशनी में अपने को देखने के लिये मजबूर हो गई थी। प्रेम ने जाते समय कहा था, 'इन दोनों की देखभाल करना।' इनकी देखभाल क्या और कैसे होगी ? क्यों न इन दोनों को विवाह की मज़बूत डोरी में बाँध दिया जाय। विवाह-बन्धन के बाद इस प्रकार का जीवन इनका हो जायेगा कि उसमें बिलगाव का मौक़ा ही नहीं रहेगा। दोनों का सम्बन्ध है ही, दोनों में स्नेह है ही। सच पूछो तो इनकी शादी कब की हो चुकी। अब तो केवल रस्मअदा करने की बात है, समाज का मुँह बन्द कर देने की बात है! तो उसका प्रस्ताव रखा जाय।

सोना अब भी चुप थी। लेकिन अपनी समझ के अनुसार कुछ न कुछ उसने कह ही डाला, "रमेश बाबू, मैं तो पढ़ी-लिखी समझदार नहीं हूँ, गरीब मूरख हूँ, लेकिन मेरी समझ में यह बात आती है कि अब आप रेखा बहिन से ब्याह कर लीजिये। मेरा मरद भी मुझे बहुत बुरा-भला कहता था। कभी-कभी मारता भी था। लेकिन गुस्सा खतम होने के बाद सब कुछ ठीक हो जाता था। मैं गिरस्ती करती और वह स्टेशन पर कमाने जाता था। इधर कामरेड बाबू के पकड़ जाने पर जैसे वह साधू हो गया। अब मार गाली सब बन्द है। नशा भी बहुत कम कर दिया। अब युनियन का काम करता है और उसका मन उसी में रमा रहता है। आप भी ब्याह कर लें और दोनों मिल कर साथ ही रहें तो बहुत अच्छा हो। क्यों आप क्या कहती हैं ? मेरी बात बहुत बेजा तो नहीं है।" सोना ने लूई की ओर देख कर कहा।

सोना की बात सुनकर लुई को आश्चर्य हुआ। जो कुछ कहने के लिये वह सोच रही थी, तर्क-वितर्क कर रही थी, उसे सोना ने अपने सीधे-सादे शब्दों में कह डाला। लुई को इससे बड़ी सहायता मिली। उसने बात आगे बढ़ाई।

"रमेश भाई, मैं आप से यह प्रार्थना करना चाहती हूँ कि अब आप रेखा रानी के साथ क़ायदे से शादी कर लीजिये। इससे हम सब का फ़ायदा होगा। देखिये, आप रेखा रानी को अपना बना चुके हैं। रेखा रानी ने भी आपकी बनी रहने के लिये जैसी कुर्बानी की है, वह भी हमारे आप के सामने है। इसलिये मैं तो चाहती हूँ कि आप अब अपने ही बँगले में रेखा रानी के साथ रहें और इस तरह गृहस्थ की ज़िन्दगी बसर करें।"

"आप बिल्कुल ठीक कहती हैं। मुझे इससे कोई एतराज़ नहीं है।"

"तो फिर हमें जल्दी करनी चाहिये। किस क़ायदे से ब्याह रचाया जाय ? आपको अपने घराने के लोगों से राय लेनी पड़ेगी ?"

"जी हाँ, राय लेनी तो चाहिये। लेकिन मेरे नज़दीक के रिश्तेदार तो हैं नहीं कोई। जो कुछ लोग हैं भी वह मुझ से इसी रेखा वाली बात को लेकर नाराज़ हैं। मैं उनसे राय लेने में कोई फ़ायदा नहीं समझता। मेरा ख़याल है कि वह लोग इस विचार को नापसन्द ही करेंगे। यों मेरे 'रामगंज' जाने में शायद उन्हें कम एतराज़ होता, लेकिन अपने घर में, स्त्री के रूप में रेखा को मैं रखूँ इसे वे नहीं चाहेंगे। अगर वे किसी तरह शादी के लिये रज़ामन्दी दे भी दें तो वह बीस पाखण्ड निकालेंगे। आप जानती तो हैं कितने दक़ियानूस होते हैं ये पुराने तरह के लोग!"

"तो फिर आप इनसे राय लेना फ़ज़ूल समझते हैं?"

"समझता तो हूँ।"

"अच्छी बात है, जाने दीजिये। उन लोगोंको छोड़िये। हम पापा से राय करें। देखें वे क्या कहते हैं। मेरा ख्याल है कि वे लोग इस बात के लिये राज़ी हो जायेंगे और उन्हीं की देख-रेख में, सारा काम आसानी से हो जायेगा।"

"मुझे बड़ी ख़ुशी होगी कामरेड लुई। आप ज़रूर पापा से बात कीजिये लेकिन उनके आज के 'मूड' में इस बात को छेड़ना ठीक न होगा। फिर कभी कुछ दिनों बाद उनसे बातें की जायँ।"

"लेकिन मैं अब 'रामगंज' वापस जाने के लिये तैय्यार नहीं हूँ। मेरे लिये जो कुछ भी आपको इन्तज़ाम करना हो आप 'रामगंज' के बाहर करें।" रेखा ने साफ़-साफ़ कहा।

लुई कुछ पशोपेश में पड़ गई। रेखा का कहना तो उचित ही था। जब एक बार वह 'रामगंज' के वातावरण से अपने को हटा लेने के लिये निश्चय कर चुकी तो फिर वहाँ जाने के लिये उसे मजबूर करना ठीक नहीं था। लुई ने कहा, "तो इसमें क्या है? आपको वहाँ जाने के लिये कोई नहीं कहेगा। आप मेरे साथ रहेंगी। मुझे भी अकेले बड़ा सूना लगता है। काम करके वापस आती हूँ तो किसी से बात

करने की इच्छा होती है। हम आप अब काम करने भी साथ ही चलेंगी।"

"अच्छी बात है। मेरे लिये यह सबसे अच्छा होगा। बुद्धू मेरा नौकर है। उसे भी बुलवा लूँ। बड़ा नेकनीयत और इमानदार है बेचारा। मुझे छोड़ने में उसे बहुत दुख होगा। वह भी साथ ही रहेगा। आगे जो कुछ होगा, देखा जायगा।" रेखा ने कहा।

"क्यों रमेश बाबू, आपको यह बात मंजूर है। अब तो आपकी मंज़ूरी से ही सब काम करना होगा।" लुई ने मुस्कराते हुये रमेश से कहा।

"यह आप ग़लत कहती हैं। प्रेम ने मुझे और रेखा को आप ही के हाथों सौंपा है, अपनी ज़िम्मेदारी से भागने की भूमिका अभी से बनाना शुरू न कीजिये। अब आपको मुझ से राजनीतिक काम ही नहीं लेना है, मेरी गृहस्थी भी सँभालनी है।" रमेश ने रेखा की तरफ़ कनखियों से ताक कर लुई की तरफ़ देखा।

रेखा और लुई दोनों के चेहरे लाल हो गये। रेखा झेंप गई। लुई भी झेंप गई। दोनों का झेंपना स्वाभाविक था।

"रमेश भइया, मेरी बात आपने मंज़ूर करली। अब मेरी भाभी मेरी बस्ती में काम करने आवेंगी न?" कहते हुये सोना मुस्करा उठी। वह बहुत ख़ुश थी।

"हाँ, क्यों नहीं! लेकिन तुम्हारे यहाँ जाकर काम क्या करना होगा, यह तुम्हें बताना पड़ेगा।" रमेश ने सोना को जवाब दिया!

"सो नहीं, ये ग़लत कहते हैं। क्या मैं औरतों में काम नहीं करना जानती?" रेखा ने बीच में कहा।

"रेखा रानी, वहाँ गान-विद्या की शिक्षा नहीं देनी है। वहाँ की गन्दी गलियों में घूम-घूम कर उन लोगों का संगठन करना है। समझीं आप।" रमेश ने रेखा को चिढ़ाते हुये कहा।

"क्यों नहीं सिखाना है।" लुई ने बीच बिचाव किया। "वहाँ की लड़कियाँ-लड़के सभी को सिलाई, हांथ के धन्धे वगैरह के साथ गीत-

गाना भी सिखाना पड़ेगा। ये ऐसे ही कहते हैं रेखा बहिन, आप बुरा न मानें। जब वहां की औरतों-बच्चों में काम करना है तो उन्हें उनकी ज़रूरत की हर बात बतानी पड़ेगी।"

रमेश चुप हो गया। रेखा ने रमेश की ओर ऐसे देखा गोया वह जीत गई हो।

"अच्छा, चलो, अब ज़रा सोना रानी के घर हो आवें। रम्मू भाई वहां खीझते होंगे।"

सभी उठकर बाहर आ गये। मि० वर्मा ने देखा यह चारो कहीं जाने की तैय्यारी में हैं। पूछा "किधर जाने का इरादा है इस पार्टी का ?"

"यहीं, ज़रा कुलियों की बस्ती की तरफ़। सोना रानी को छोड़ आवें।" लुई ने कहा

बहुत अच्छी बात है। ज़रूर जाओ। वहाँ से लौटकर जल्दी घर आना। खाना मैं साथ ही खाऊँगा। अकेले उदासी मालूम पड़ती है।"

"ज़रूर, ज़रूर पापा, मैं अभी घंटे भर में आ जाउँगी।"

मि० वर्मा अन्दर गये और लुई अपने दल-बल के साथ कुलियों की बस्ती की ओर चल दी।

कुलियों की बस्ती में सियापा पड़ा हुआ था। आज कचहरी से लौटने पर सभी लोग बहुत उदास थे। प्रेम जब पहिले गिरफ़्तार हुआ तो लोगों को गहरा धक्का लगा था। धीरे-धीरे कुली उस धक्के से उबरने लगे थे। पिछले दिनों वकील ने उम्मीद बँधाई थी कि प्रेम ज़रूर छूट जायेगा। इससे लोगों में जान आने लगी थी। लेकिन आज के फ़ैसले ने लोगों का दिल तोड़ दिया। अब डेढ़ साल बाद ही लोग प्रेम को अपने बीच में पावेंगे। कामरेड शरीफ़ की गिरफ़्तारी से जो जगह खाली हुई थी उसे प्रेम ने ले लिया था। अब प्रेम की जगह कौन लेगा !

"महतो, मेरा बदन गरम हो रहा है। मैं खाट पर पड़ने जा रही हूँ। तुम बाजार में खा आओ।" रुपन ने रञ्जन से कहा।

"क्यों, क्या हुआ?" रञ्जन ने घबराकर कहा। "कैसी तबियत है तुम्हारी? बहुत थक गई क्या?"

"हाँ, जी ख़राब है। दिल घबराता है। न जाने क्या होने वाला है। फ़ैसला ठीक नहीं हुआ।" रुपन ने धीरे-धीरे खाट पर लेटते हुये कहा। उसका बोख़ार तेज़ी से बढ़ता जा रहा था।

"रञ्जन समझ गया, रुपन को बहुत गहरा धक्का लगा है।" रम्मू को आवाज़ देकर फिर अन्दर आया।

"कपड़ा ओढ़ा दूँ तुम्हें, जाड़ा लग रहा है?" रञ्जन ने फटी धोतियों की बनी मोटी चादर उठाते हुये कहा।

"हाँ, ओढ़ा दो। बदन टूट रहा है।" कराह कर रुपन ने कहा।

"क्या बात है बाबा! कैसी तबियत है माई की?" रम्मू ने पूछा।

"बोखार तेज है। बदन टूट रहा है। किसी दवा-दरबन का इन्तजाम करो। जल्दी जाओ।" रञ्जन ने जल्दी करते हुये कहा। उसका जी धड़क रहा था! आगे क्या होनेवाला है जैसे इसकी सूचना उसे मिल गई थी। रञ्जन धीरज वाला आदमी था। सोचा 'भगवान जो कुछ करेंगे अच्छा ही करेंगे। अपने बस में जो हो कर डालना चाहिये।'

रम्मू ने अपनी पोटली देखी। पैसे थे। वह झट बाहर निकल गया। रञ्जन बुढ़िया के सरहाने बैठा चुपचाप सोचता रहा। दिन भर तो भली-चंगी थी। कचहरी भी गई। मना किया तकलीफ़ होगी, दिन खराब है लेकिन मानी नहीं। अब क्या होगा? उसने नाड़ी पकड़ी. बोख़ार तेज़ होता जा रहा था। बुढ़िया ने रुक-रुक कहा, "कचहरी में बदन भारी हो रहा था। आई यहाँ तक तो बोखार हो आया। सोचा थकान है, सब ठीक हो जायेगा, जरा लेट लूँ। लेकिन अब बहुत बोखार चढ़ गया। महतो तबियत बहुत खराब हो रही है। क्या करूँ!"

रजन रुपन के माथे पर हाथ रखकर चुप बैठा रहा। बुढ़िया कुछ न कुछ कहती ही रही। रम्मू के आने की इन्तज़ार थी। कहां चला गया? आधा घण्टा हो गया। चौक से दौड़कर दवा ले लेनी चाहिये थी। बड़ा सुस्त है। एक्का ही कर लेता। क्या बताऊँ, बड़ी देर लग रही है। रज्जन घबरा कर बार-बार बाहर की ओर देख रहा था।

पैरों की आवाज़ सुनी तो रजन बाहर आ गया।

"आ गये रम्मू, दवा लाये?" रजन ने उत्सुकता से पूछा।

"रम्मू नहीं, मैं हूँ, लुई! क्या बात है चौधरी? यह सन्नाटा क्यों? दवा किसके लिये। किसकी तबियत खराब है!" लुई ने जल्दी-जल्दी ये सब सवाल पूछ डाले। रजन डबरी लेकर फिर वापस आया और धीरे से बोला, "अन्दर ही आकर देखिये, रम्मू की माई की हालत खराब है। बहुत तेज बोखार है।"

सोना का दिल धड़कने लगा। जल्दी से जाकर पैर छू कर देखा बोख़ार तेज़ था। लुई सर पर हाथ धरे कुछ सोचने लगी। बोली, "अच्छा, मैं डाक्टर लाती हूँ। घबराने की कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायेगा।"

"आप कहाँ तकलीफ़ करेंगी। रमुआ गया है दवा लेने। न मालूम कहाँ रह गया। अजब सुस्त है यह लड़का!" रजन झुँझला रहा था।

"कामरेड लुई आप यहीं रहें। मैं डाक्टर को लेने जाता हूँ। रेखा, तुम देखना यहाँ का काम काज," कहता हुआ रमेश तीर की तरह बाहर निकल गया।

बुढ़िया बड़बड़ाने लगी: "वह मेम साहब भी तो कह रही थी हमारा कामरेड छूट जायगा·····नहीं छूटा। यह जुलुम है···वकील झूठा था। उसने हम सब को धोखा दिया। हायरे, इतने दिन कैसे रहेगा हमारा लाल जेल में·····ओह बोखार तेज है, दरद हो रहा है जोड़ में, दवा लाओ·····रम्मू के बाबा, तबियत बहुत खराब है। ओह-ओह······"

"यह लो दवा, ले आया, डाक्टर नहीं था, देर हो गई। इन्तजार किया तो भी नहीं आया, कम्पोटर ने दवा बनाई है।" रम्मु हाँफ़ते-हाँफ़ते बोला। दौड़ता आया था चौक से।

लुई ने ख़ोराक़ देखी और गिलास में दवा डाल कर बुढ़िया को पिला दिया। बुढ़िया बड़बड़ाती रही, "न पियूँगी, कभी न पियूँगी यह दवा, बड़ी कड़वी है, बापरे······अब कोठरी बन्द हो गई होगी उसकी, मेरे बच्चे की······ऐसी ही कोठरी जैसी मेरी है······पानी, जबान सूख गई है, पानी···" लुई ने बुढ़िया को पानी पिलाया और धीरे से लेटा दिया।

परिस्थिति लुई के समझ में आने लगी थी।

"कब से बोख़ार है चौधरी" बूढ़े रज्जन की ओर उदास आँखों से देखकर लुई ने पूछा।

"वही, तीन बजे से, कचहरी में ही बोखार आ गया था।" रज्जन ने जवाब दिया, "लेकिन मुझे अब बताया। शाम को बताती तो अब तक दो खोराक पी लिया होता।" रज्जन ने कहा। वह पछता रहा था।

लुई समझ गई। जर्जर शरीर, कमज़ोर दिल, बुढ़िया रुपन उस धक्के को बर्दाश्त न कर सकी। उसने देखा सोना, सर नीचा किये पैर के पास खड़ी है। टप्-टप् आँसू के बूँद गिर रहे हैं।

थोड़ी देर में रमेश डाक्टर को लेकर वापस आ गया। डबरी लेकर रेखा बाहर गई और डाक्टर साहब अन्दर आये। नब्ज़, फेफड़ा, पेट सब कुछ देख लेने के बाद डाक्टर साहब ने कहा, "कोई घबराने की बात नहीं है। बुढ़िया जल्दी ही अच्छी हो जायेगी। मलेरिया है। आइये, दवा लेने कौन जायेगा, आप?"

"जी हाँ, मैं ही चलता हूँ।" रमेश ने कहा

बाहर जाकर डाक्टर साहब ने बताया कि सिर्फ़ मलेरिया नहीं है। कम्प्लीकेशन हो गया है। इतनी जल्दी इस बुढ़िया की हालत ख़राब हो गई, इस पर डाक्टर साहब को ख़ुद ताज्जुब था। फिर भी वह दवा देंगे।

रमेश ने वापस आकर दवा पिलाई, सभी लोग चुप बुढ़िया के पास बैठे रहे, बीच-बीच में बुढ़िया कराह उठती, करवट लेने की कोशिश करती अथवा बड़बड़ाने लगती। रमेश की समझ में आया कि बुढ़िया की हालत ठीक नहीं हो रही है। बारह बजने वाले थे। उसने लुई को बाहर बुलाया।

"देखिये, हम लोगों का यहाँ रहना रात भर बहुत ज़रूरी है। डाक्टर साहब बता गये हैं कि सिम्पल मलेरिया नहीं है। कम्प्लीकेशन बढ़ गया है।" रमेश ने लुई से बहुत धीमे धीमे कहा।

"हाँ, यही तो मैं भी सोचती हूँ। हम लोगों का यहाँ रहना बहुत ज़रूरी है। मालूम नहीं कब क्या ज़रूरत पड़े। लेकिन रेखा का क्या होगा ? कब तक बेचारी बैठी रहेगी, इसी तरह ?" लुई ने चिन्तित हो कर कहा।

"मेरी राय तो यह है कि आप रेखा को लेकर घर जायँ। मैं बुढ़िया की देख-भाल कर लूँगा। सबेरे आ जाइयेगा फिर।" रमेश ने कहा।

"नहीं, यह नहीं हो सकता। मुझे भी यहीं रहना चाहिये। एक रात जगने से मर थोड़े ही जाऊँगी। रम्मू के साथ रेखा को भेज दिया जायँ।" लुई ने राय दी।

रेखा को बाहर बुला कर जब रमेश ने अपना प्रस्ताव रखा तो उसे दुख हुआ। "मुझे ही क्यों घर भेज रहे हैं आप ? मैं क्या इतनी कमज़ोर हूँ कि एक रात की तकलीफ़ नहीं सह सकती ?" रेखा ने विनय करके कहा। वह भी साथ रुक जाने की अनुमति चाहती थी।

कुछ देर विवाद के बाद तय हुआ कि रेखा भी वहीं रहेगी। सोना के घर में रेखा और लुई बारी-बारी से आराम करेंगी। रम्मू घर पर खबर दे आयेगा।

"सोना रानी, बड़ा आराम मिल रहा है मुझे। थक गई थी बिल्कुल।" रेखा ने सोना की चारपाई पर लेटे-लेटे कहा। सोना शर्म से गड़ गई। अभी तक बुढ़िया की चिन्ता में उसका ध्यान अपनी

दुरावस्था की ओर नहीं गया। रेखा ने जब यह कहा तो उसकी ग़रीबी और परवशता उसे खलने लगी। उसके मन में बिजली सी चोट लगी, 'कहाँ यह शरीर, कहाँ यह मेरी फटी गुदड़ी !'

सोना के लिये यह नया अनुभव था। उसके घर में अब तक बहुत से मेहमान आ चुके थे। लेकिन ऐसा मेहमान उसके यहाँ अब तक नहीं आया। एक तरफ़ उसे बुढ़िया की चिन्ता थी, किसी भी और बात में मन लगना मुश्किल था। दूसरी ओर घर में रेखा रानी का निवास था। उनकी क्या सेवा-सत्कार करे वह ! घर में था ही क्या उनके लायक ! बेचारी रात को कुछ खा भी नहीं सकीं। बाज़ार से कुछ मँगाने का मौका नहीं था। आख़िर उसने हिम्मत करके पूछा ही, "कुछ खाओगी, बना दूँ ! बड़ी भूख लगी होगी आपको ?"

"नहीं, इतनी रात गये कुछ खाना-पीना ठीक नहीं। मन नहीं कर रहा है। ज़रा, देखो, बुढ़िया का क्या हाल है ?" रेखा ने इस बात को टालने के लिये कहा। इतना तो वह समझ ही सकती थी कि सोना के पास इतनी रात गये खिलाने को क्या होगा ! रसोई बनाना उस समय बिल्कुल बेमतलब था।

"अच्छी बात है। मैं जाती हूँ, अभी ख़बर दूँगी।" कह कर सोना चली गई।

मि० वर्मा को जब यह ख़बर लगी कि सभी बच्चे बुढ़िया रुपन की सेवा में लगे हुये हैं तो उन्हें बड़ा संतोष हुआ। प्रेम की याद उन्हें आई। प्रेम ने ही इन सभी लोगों की ज़िन्दगी इस तरफ़ फेर दी थी। परोपकार बड़ी भारी चीज़ है। बच्चों ने बहुत अच्छा किया।

"लेकिन उन सभों के सोने वग़ैरह का क्या होगा ?" मि० वर्मा ने रम्मू से पूछा।

"कुछ न कुछ हो ही जायेगा। बाबू साहब, हम लोग बहुत ग़रीब हैं। हमारे पास ओढ़ने-बिछाने को क्या है। लेकिन जहाँ तक बन

पड़ेगा उन लोगों को कोई तकलीफ़ नहीं होगी।" रम्मू ने मि० वर्मा को विश्वास दिलाया।

"सो तो ठीक है, अच्छा चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" कहकर मि० वर्मा ने रम्मू को मोटर में बिठाया और बस्ती की ओर चल दिये। वहाँ का दृश्य हृदय-दावक था। बुढ़िया ज़ोर-ज़ोर से बड़बड़ा रही थी। लुई उसे सँभालने की कोशिश कर रही थी। रमेश थर्मामीटर लेकर बोख़ार की डिग्री पढ़ रहा था। धीरे से मि० वर्मा भीतर आये। रज्जन उन्हें पहचानता नहीं था। अचम्भे में पड़ गया। रम्मू ने जब बताया कि ये कामरेड प्रेम के पिता हैं तो रज्जन की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। उसने झुककर मि० वर्मा का पैर छू लिया।

"बाबू जी, हमारे कामरेड बाबू होते तो आज इस बुढ़िया की जान बच जाती। उन्हीं के वियोग में बुढ़िया मर रही है। रमुआ से ज़्यादा उनको मानती थी। कोख में जनम लेने से क्या होता है! आदमी व्योहार से अपना पराया बनता है। प्रेम बाबू बिना बुढ़िया से दो बात किये, कुशल-मंगल पूछे जाते नहीं थे। भगवान् उनका भला करे।" रज्जन ने रोते-रोते कहा।

मि० वर्मा की दशा बुरी थी। प्रेम की याद से उनका कलेजा फटने लगा। बोले, "कोई बात नहीं है चौधरी, तुम्हारा प्रेम वापस आयेगा ही कभी न कभी। बुढ़िया अच्छी हो जायेगी तो फिर अपने प्रेम को देख लेगी। घबराओ नहीं। मन में शान्ति रखो।" कहने को तो मि० वर्मा कह गये, लेकिन स्वयं उनके मन में जो तूफ़ान उठा हुआ था वह कैसे शान्त होगा!

रज्जन खड़ा उनकी तरफ़ देखता रह गया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। मि० वर्मा ने रज्जन को समझा-बुझा कर शान्त किया। उनके आँसू भी एक दो बार ढुलक ही पड़े थे।

चले तो रज्जन के हाथ में कई नोट देने लगे। रज्जन उनका क्या करता? लेकिन उसे लेना ही पड़ा। लुई, रमेश सबसे कह गये, "जिस

किसी बात की ज़रूरत पड़े ख़बर भेजना, सवेरे मैं स्वयं आ जाऊँगा।"

रात तो किसी तरह कट गई, लेकिन सवेरा होते-होते ही बुढ़िया की हालत ख़राब होने लगी। बोख़ार एकदम उतरने लगा। एक घंटे में टेम्परेचर ६७ डिगरी पहुँच गया। सभी घबड़ा उठे? अब क्या किया जाय? रोना मच गया। सोना अब अपने को रोक न सकी। लुई, रेखा, रमेश सभी आत्म विश्वास खोने लगे। रज्जन तो पागल हो रहा था। रम्मू दौड़ कर मि० वर्मा के पास पहुँचा। चारपाई पर थे बेचारे, योंही दौड़ कर आ गये। मोटर बस्ती में पहुँची तो उन्होंने देखा लोग भागे हुये रज्जन की कोठरी की ओर दौड़ रहे हैं। सब मामला समझ गये। वहाँ पहुँचते-पहुँचते बुढ़िया की अन्तिम सांस भी ख़त्म होने लगी थी। भीड़ को हटाकर अन्दर पहुँचे तो देखा, बुढ़िया को चारपाई के नीचे उतारने का इन्तज़ाम हो रहा है। बुढ़िया ने एकबार आँख खोली। मुँह से कुछ कहना चाहती थी लेकिन कह न सकी। उसके प्राण पखेरू उड़ गये। चारो ओर रोना-पीटना मच गया।

लुई, रेखा, सोना को लोगों ने पहले ही कोठरी के बाहर कर दिया था। रज्जन एक तरफ पड़ा धीरे-धीरे 'हाय-हाय' कर रहा था। रम्मू तो पागल हो गया था। आख़िर वह अपने भाई को बचा न सका! मि० वर्मा यह दृश्य देख कर काँप उठे। सबका यही अन्त होता है, उन्होंने सोचा!

दस बजे कुलियों ने जनाज़े का जलूस निकाला। बुढ़िया के शव को लाल चादर से ढका गया था। जलूस में नज़ीर, बशीर, कल्लन सभी मौजूद थे। शहरवालों ने जलूस को देखा तो दंग रह गये। इतने आदमी तो किसी भी शव के जलूस में शामिल नहीं होते। मालूम हुआ कि कुलियों के नेता रज्जन चौधरी की स्त्री के शव का जलूस है, तो आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। पीछे मोटर में मि० वर्मा, रेखा और लुई को साथ बिठाये हुये चल रहे थे।

मि० वर्मा आख़िर तक साथ ही रहे। जब घाट से और लोग लौटे तो वह भी वापस आये। घर पहुँच कर उन्होंने आराम कुर्सी पर लेटते हुये कहा, "बेटी लुई, अब तुम लोग कुछ चाय-वाय पी डालो, बहुत थक गई हो। देखो रमेश बाबू, मैं ज़रा थक गया हूँ। आराम करना चाहता हूँ। शाम को तुम चले जाना रज्जन के घर। देखते आना क्या हो रहा है। मैं सोचता हूँ कि क्रिया-कर्म ख़तम हो जाने के बाद रज्जन को यहाँ बुला लिया जाय। बूढ़ा आदमी है वहाँ बड़ी तकलीफ़ होगी उसे। ज़िन्दगी के बाकी दिन आराम से गुज़र जायँ तो अच्छा।"

"पापा, अच्छा तो होगा। रम्मू से कहा जाय कि वह रज्जन को राज़ी कर ले। रज्जन यहाँ आराम से रहेगा। शरीर को सुख तो मिलेगा ही, मन को भी संतोष होगा।" रमेश ने सहमत होते हुये कहा।

"इसीलिये मैं कह रहा था। बेचारा रज्जन अब अकेला हो गया। बहुत कष्ट में है इस समय वह। जिसका इतने दिनों का साथी छूट जाय, वह भी ऐसी दशा में, उसे कितना दुख होगा? बुढ़िया को प्रेम की सज़ा से इतना धक्का लगा!" मि० वर्मा बहुत दुखी थे। एक पराई बुढ़िया, सिर्फ़ इसलिये कि वह अपने स्नेह-पात्र की सज़ा को बर्दाश्त न कर सकी, उसकी याद में दम तोड़ गई! और मैं, उसका पिता, अभी उसी तरह बना हूँ। मेरा ज़िन्दा रहना अब बेकार है। अपने अरमानों को पूरा करने का अवसर अब मुझे नहीं मिलेगा। मेरी आख़िरी घड़ियाँ यों ही बीतेंगी···प्रेम कब आयेगा? अभी बहुत दिन बाक़ी हैं। डेढ़ साल, अठारह महीने! ओफ़! क्या मैं इतने दिनों तक ज़िन्दा रह सकूँगा···!

'लेकिन यह क्या? यह मेरी कमज़ोरी है।' मि० वर्मा के भाव बदलने लगे। 'प्रेम चला गया तो क्या हुआ? ग़रीबों की सेवा ईश्वर की सेवा है। प्रेम ने अपना सब कुछ मिटा कर, अपना सब कुछ छोड़कर उनकी सेवा का व्रत लिया। मैंने ज़िन्दगी भर ग़रीबों को चूसा। उनके आपसी झगड़ों से फ़ायदा उठा कर अपना घर भरा! वकालत

बैरिस्ट्री आख़िर और है क्या ? निपट गवाँरों को मूर्ख बना कर उनसे रूपये वसूल करने का क़ानूनी ढंग ! लेकिन मेरा प्रेम मेरे पापों का प्रायश्चित कर रहा है। प्रेम मेरा उद्धार कर रहा है। मि० वर्मा सोचते रहे।

रमेश ने उनका मौन तोड़ने के लिये कहा, "पापा, यह बुढ़िया रुपन भी कैसी औरत थी ! प्रेम के लिये उसने अपनी जान ही दे दी।"

"हाँ बेटा, इन गरीबों का न पूछो। बड़ा दिल होता है इनका। अमीर तो रुपये की गर्मी में मनुष्य स्वभाव के सहज गुणों को भूल जाते हैं। वह इनसान नहीं रह जाते। लेकिन ग़रीब के पैसा नहीं होता। उनके पास हृदय होता है !" पापा भावुक होते जा रहे थे। कुर्सी पर ज़रा अकड़ कर बैठ गये।

"रमेश !" मि० वर्मा ने कहा, "मुझे कोई परवाह नहीं, प्रेम डेढ़ नहीं तीन बरस जेल में रहे। उसने ग़रीबों की सेवा की है। मुझे इससे संतोष है। तुम उसके साथी हो। तुम भी यही करना। मैं बूढ़ा हूँ। तुम्हें आशीर्वाद ही दे सकता हूँ। बेटा, ईश्वर तुम लोगों को कर्तव्य मार्ग पर बढ़ते जाने की क्षमता दे·····!" मि० वर्मा के होंठ काँप रहे थे। वे फिर कुर्सी पर लेट गये।

रमेश पापा की ओर एक टक देखता रहा। अब तक वह प्रेम के प्रति स्नेह और श्रद्धा के भाव रखता था। मि० वर्मा इतने महान व्यक्ति हैं, इसका उसे पता नहीं था। क्यों न हो ? प्रेम ही के पिता तो थे !

"पापा, आपके आदेश का पालन हम जीवन भर करेंगे।" रमेश ने भरे गले से कहा !

—०—

९

शीतल छाया

समय जाते देर नहीं लगती। प्रेम के दिन बीतने लगे। शुरू में तो ज़रा मुश्किल पड़ती थी लेकिन जब से शुक्ला जी भी सत्याग्रह कर के अन्दर आ गये, प्रेम का समय मज़े में कटने लगा। शुक्ला जी प्रेम पर बहुत स्नेह रखते थे। बिचारों में ज़मीन आसमान का अन्तर था, परन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध बहुत अच्छा था। वह प्रेम को इस लिये चाहते थे कि वह बहुत ही मेहनती कार्यकर्ता था। पढ़ाई-लिखाई के अलावा उसमें काम में जुट जाने की ऐसी आदत थी कि जिस काम को वह लेता उसे पूरा करके ही छोड़ता था। शुक्ला जी समझते थे कि ऐसे नवयुवक को बढ़ावा देना, प्रोत्साहित करना अच्छा है।

जेल जीवन में शांति तो रहती ही है। अगर कोई विशेष घटना न घट जाय तो जेल वाले भी यह पसन्द करते हैं कि जहाँ तक हो समय अमन चैन से कटे। शुक्ला जी भी शांति प्रकृति के व्यक्ति थे। दिन भर घूम-घूम कर ताश खेलना अथवा चाय पीना यही उनका काम था। कभी-कभी प्रेम से देर तक बातें भी हुआ करतीं थीं। शुल्का जी कहते, "देखो भाई प्रेम, तुम्हारी पार्टी जो चाहे कहे, आज की हालत में, इस सत्याग्रह के सिवाय और कोई रास्ता नहीं था।"

"शुक्ला जी, मैं इसे नहीं मान सकता। आज की दशा में इस तरह नोटिस देकर चले आने के माने हैं कि आप क्रान्तिकारी परिस्थिति का पूरा फ़ायदा नहीं उठा रहे हैं। जनता के क्षोभ और उत्साह को रोकने से वह हतोत्साह हो जायेगी। ऐसे मौक़े पर हमें जनता को मज़बूत बनाना चाहिये। आज की परिस्थिति की यह माँग नहीं है कि आप नोटिस देकर चले आइये!"

"लेकिन यह भी तो देखो कि जब तक गाँधी जी और दूसरे नेता इसी प्रकार के सत्याग्रह के हामी हैं दूसरे लोग कुछ नहीं कर सकते। अगर अपने-अपने मन से प्रोग्राम बना कर लोग चलने लगें तो क्या होगा? इससे अनुशासन टूटता है, विशृखँलता बढ़ती है और स्वयं अपना आन्दोलन कमज़ोर पड़ता है।"

"तो मैं यह कब कह रहा हूँ कि अपने मन से लोग प्रोग्राम बना कर काम करने लगें। मेरा तो सिर्फ़ यह कहना है कि सभी कार्यकर्ताओं और नेताओं को चाहिये कि वे गाँधी जी और दूसरे लीडरों पर दबाव डालें कि सत्याग्रह का रूप बदला जाय और उसे परिस्थिति के अनुसार प्रभावशाली और मज़बूत बनाने के लिये जनता को पूरी तरह उसमें लाया जाय। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि इस बात को उनके सामने ज़ोरदार तरीक़े से लाने के लिये हमारे कार्यकर्ताओं की आवाज़ में बल चाहिये। बल तभी आ सकता है जब कि उनके दिमाग़ ख़ुद साफ़ हों, परिस्थिति की गंभीरता और उसकी माँग को वे समझते हों और वे स्वयं उसको पूरा करने के लिये तैय्यार हों। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक अपने लीडरों पर वे ज़ोर भी नहीं डाल सकते। शुक्ला जी, मैं तो यह समझता हूँ कि यह सुनहला मौक़ा हाथ से यों ही जाने दिया जा रहा है। मुझे इसका बहुत दुख है।"

"लेकिन क्या तुम समझते हो कि गाँधी जी इन बातों को नहीं जानते? गाँधी जी से अधिक हिन्दुस्तानी जनता के नब्ज़ को और कोई

नहीं पहिचानता। उनसे बहस करना, उन्हें समझाने की कोशिश करना सूरज को दिया दिखाना है।"

"शुक्ला जी, क्षमा कीजिये, मैं इस अंधी-भक्ति का क़ायल नहीं। यह राजनीति है। हम राजनीतिक कार्यकर्ता हैं। जिस बात के लिये हम अपनी ज़िन्दगी के सभी सुख आराम छोड़ कर जेल काट रहे हैं, उसकी पूरी जाँच पड़ताल कर लेने का हम सभी लोगों को पूरा हक़ है। अनुशासन के महत्व को मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन अंधी भेड़ की तरह जिधर कोई हाँक ले जाय उधर ही चले जाने के लिये मैं तैय्यार नहीं हूँ। मैं अपने दिमाग़ को भी इस्तेमाल करना चाहता हूँ।"

"तुम्हारा मतलब यह है कि हम लोग अपने दिमाग़ को इस्तेमाल नहीं करते ?"

"मेरा तो यही ख़्याल है। आप लोग अपनी सारी ज़िम्मेदारी गाँधी जी के ऊपर छोड़ कर ख़ुद मौज करना चाहते हैं। हर बात में 'गाँधी जी जानें' का नारा बुलन्द करने से तो राष्ट्र का काम नहीं चलेगा। आप राष्ट्र कर्मी हैं, राष्ट्र आप से बहुत कुछ आशा रखता है। लेकिन उसके रोज़मर्रा के सवालों को अगर आप हल करने लगें अथवा किसी अखिल भारतीय नीति को उन्हें समझाने लगें तो आप को अपना दिमाग़ लगाना पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता कि आप लोग सोचते ही नहीं। हाँ, यह ज़रूर कहता हूँ कि आप लोग परिस्थिति का अध्ययन करने की तकलीफ़ गवारा नहीं करते। यह बड़ी भारी कमज़ोरी है।"

"बहुत हद तक तुम ठीक कहते हो. लेकिन जो अच्छे कार्यकर्ता हैं, उन्हें पढ़ने-लिखने का समय नहीं मिलता। वे तो अपने अनुभव से ही काम करते रहते हैं।"

"लेकिन आप यह तो मानेंगे कि यही कार्यकर्ता जनता के नेता हैं। अगर उन्हें सोचने समझने की आदत न पड़ जाय, इनको इतना भी पता न हो कि जो सवाल जनता के सामने आते हैं उनका

क्या सही हल है तो ये लोग जनता का मार्ग प्रदर्शन नहीं कर सकते ?"

"हाँ, यह तो मैं मानता हूँ, लेकिन तुम लोग किताबी कीड़े हो। मोटी-मोटी किताबें पढ़ने या लम्बी-चौड़ी बात करने से जनता का काम नहीं चलता है। जनता को तभी रास्ता बताया जा सकता है जब कि कार्यकर्ता जनता के जीवन मे घुल-मिल जाँय। हमारे कार्यकर्ता इतना तो करते ही हैं। तुम लोग रूस, चीन, सारी दुनिया की बात हाँकते हो लेकिन तुम्हें अपने ज़िले, शहर, मुहल्ले का पता नहीं रहता। जानते हो, जब तक कि तुम जनता के साथ घुलमिल न जाओ तुम्हारे समाजवादी सिद्धान्त उसकी समझ में नहीं आ सकते। समझ में आ भी जाँय तो वह उस पर चलेगी नहीं।"

"लेकिन शुक्लाजी, आप यह कैसे कह सकते हैं कि पढ़ना-लिखना ज़रूरी नहीं है ? बात यह है कि बिना पढ़े लिखे रूस, चीन आदि के महत्व को समझा जा नहीं सकता। आज की राजनीति ऐसी नहीं है कि उसे किसी देश की सीमा में ही बाँधा जा सके। आप जानते हैं लड़ाई चल रही है। योरप में एक देश की हार या जीत हो तो उससे हमारे देश के जीवन पर पूरा असर पड़ता है। आप देखते हैं, जबसे हिटलरवाद का उदय हुआ कांग्रेस ने बार-बार पराजित, पददलित और आक्रान्त देशों के साथ अपनी सहानुभूति दिखाई है। यह सहानुभूति केवल इसलिये नहीं है कि हिन्दुस्तान को इन देशों की दुर्दशा पर बड़ी दया आती है बल्कि इसलिये कि हिन्दुस्तान यह साफ़ देखता है कि इन देशों की विजय और उत्थान में ही उसका भी कल्याण है।"

"हाँ, यह बात तो ठीक है लेकिन मेरी शिकायत यह है कि तुम लोगों का ध्यान हमेशा योरप और रूस की ओर लगा रहता है। यह बात ग़लत है। हमें पहिले अपने देश की चिन्ता करनी चाहिये।"

"लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं हुआ कि हम उन देशों को भूल जाँय। हमारे देश की जनता की ही तरह उन देशों की जनता भी क्रान्ति-

कारी और प्रगतिशील है। इसलिये हमारा उनका अटूट सम्बन्ध है।"

इस प्रकार की बातें एक नहीं कई बार प्रेम और शुक्लाजी में हो चुकी थीं। लेकिन शुक्लाजी ने कभी भी गंभीरतापूर्वक प्रेम की बातों पर ग़ौर नहीं किया। उनके ऊपर केवल यही असर पड़ता था कि प्रेम पढ़ता-लिखता ख़ूब है। बड़ा अच्छा और होनहार नौजवान है। प्रेम को यह शौक़ था कि शुक्लाजी कुछ पढ़ा लिखा करें। वह हमेशा उनकी कोठरी में किताबें रख आया करता, उनसे ज़िद करता, लेकिन शुक्लाजी बारबार वादा करने पर भी अर्थशास्त्र और राजनीति की शुष्क, मोटी किताबें पढ़ न सके। उनका मन नहीं लगता था। कभी-कभी अख़बार ज़रूर पढ़ लिया करते थे। वक़्त कटता और कुछ ख़बरें भी मालूम हो जातीं।

व्यक्तिगत सत्याग्रह में आये अन्य साथियों के साथ प्रेम का समय इसी प्रकार कटता रहा। बातचीत, बहस, गर्मागर्मी ये रोज़ के काम थे। प्रेम के बारे में लोगों की यह राय हो गई थी कि वह बहुत समझदार और मनस्वी तरुण है।

जेल जीवन में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है मुलाक़ात। बाहर से मिलने वाले लोग जब आते हैं तो वे जानें क्या सोचा करते हैं। ये बातें होंगी, वह बातें होंगी। लेकिन जब सामना पड़ता है तो जैसे सब बातें भूल जाती हैं। समझ में ही नहीं आता क्या बातें की जाँय? बस एक दूसरे को देखते रह जाते हैं। अन्दर के क़ैदियों की न पूछो। ऐसा साज-बाज करते हैं गोया शादी के लिये जा रहे हों। कपड़े साफ़, दाढ़ी साफ़, बाल बने हुये, 'टिपटाप' होने की पूरी कोशिश रहती है। दो दिन पहले से ही तैय्यारी शुरू हो जाती है। सबेरे से इन्तज़ारी होने लगती है। नम्बरदार पर्चा लेकर आया कि नहीं यही सवाल दिमाग़ को परेशान किये रहता है। पर्चा आया तो न पूछिये। लम्बे-लम्बे डग भरते हुये फाटक की ओर बढ़े चले जाते हैं!

लेकिन मिलाई के बाद मन उदास हो जाता है। घर की परिस्थितियाँ, स्नेही-सम्बन्धियों की परेशानियाँ, काम का हाल आदि जान

लेने पर मन उन्हीं में उलझा रहता है। एक दो रातें ज़रूर ख़राब हो जाती हैं। यह प्रक्रिया जेल जीवन का एक स्वाभाविक अंग है।

प्रेम को जब यह पता चला कि लुई, रेखा और रमेश मिलने आये हैं तो उसका मन उछलने लगा। फ़ौरन फाटक पर पहुँच गया। सामने लुई बैठी, बायें तरफ रेखा और दाहिने तरफ़ रमेश। घुलमिल कर बातें होने लगीं।

"कहो रमेश क्या हाल है? रेखा रानी तुम्हें परेशान तो नहीं करतीं?" प्रेम ने मुस्कराते हुये कहा। रमेश प्रेम के इस मज़ाक से झेंप गया। रेखा ने सर नीचा कर लिया। सोचा, 'बड़े वैसे हैं, यह भी कोई सवाल है?' रमेश ने लुई की तरफ़ इशारा करते हुये कहा, "इन्हीं से पूछो, हम दोनों की गार्जियन से!"

प्रेम ने लुई की तरफ आँख उठाकर देखा, सहमा और चुप रहा। प्रेम ने चाहा था कि शुरू से ही ऐसा वातावरण बन जाय कि रोने-धोने का सिलसिला जारी न हो। लेकिन लुई की गंभीर मुद्रा से उसका मन पिघलने लगा था। लुई की चपलता उसे याद थी। लेकिन कोर्ट और जेल दोनों जगह उसमें ऐसी गंभीरता आ गई थी कुछ न पूछो। लुई ने प्रेम की ओर देखा, उसका चेहरा लाल होने लगा, आँखें डबडबा गईं। लेकिन आगे वह अपने को रोक ले गई।

"काम कैसे चल रहा है?" प्रेम ने लुई की तरफ़ देख कर पूछा।

"चल रहा है किसी तरह। पहिले मैंने सोचा था कि पढ़ाई जारी रखूँ और पार्टी का काम भी करती चलूँ। लेकिन दोनों काम हो नहीं सकते। मैंने पढ़ने का इरादा बिल्कुल छोड़ दिया है। इधर कुलियों की बस्ती में और रेलवे मज़दूरों के बीच कई बार गई और उनसे बातचीत की। कुछ संगठन हुआ भी है। आगे और भी ज़्यादा काम होगा।"

"पार्टी के साथियों का क्या हाल है? तन्दुरुस्ती सभों की ठीक है? काम मज़े में चल रहा है?"

"हाँ, किसी-न-किसी तरह चल रहा है। उनको रुपयों की बहुत कमी पड़ती है। आज की परिस्थिति में तुम जानते ही हो ज़रा-ज़रा-सी बात के लिये काफ़ी परेशानी होती है और ख़र्च भी काफ़ी पड़ जाता है। सत्याग्रह शुरू होने के समय से ख़ूब पर्चे निकाले गये। अपनी पालिसी का ख़ूब प्रचार हुआ। लेकिन साथियों की सेहत ख़राब होती जा रही है। आराम करने के लिये फ़ुर्सत कहाँ! धन की कमी से खाने-पीने की भी काफ़ी तकलीफ़ रहती है।" लुई ने चिन्ता प्रगट करते हुये कहा।

"तुम लोगों ने कुछ इन्तज़ाम सोचा?"

"हाँ, कुछ नये ज़रीये बना तो लिये हैं लेकिन उनसे ख़र्च पूरा नहीं पड़ता। मैंने अपने काफ़ी गहने इधर-उधर कर डाले। पापा को अभी कुछ पता नहीं है। उनसे छिपाया है अभी तक। तुम्हारी अँगूठी और रिस्टवाच अभी बचे हैं।" लुई ने सब कुछ सीधे-सीधे कह डाला जैसे कोई विशेष बात नहीं की है उसने।

प्रेम को गर्व हुआ। उसकी लुई अब पार्टी का काम करने लगी है। उसे पार्टी के काम के लिये अब कोई भी त्याग बड़ा नहीं मालूम पड़ता। प्रेम ने लुई की ओर देखा तो उसकी आँखों की कोरों पर स्नेहाश्रु की पतली रेखायें स्पष्ट मालूम पड़ती थीं। प्रेम ने रमेश को इशारा करते हुये कहा, "सुन रहे हो रमेश इनकी बातें!"

"हाँ, सुन तो रहा हूँ। लेकिन मुझे इनसे शिकायत है। इन्होंने अभी तक मुझसे कुछ नहीं कहा। अगर पार्टी के लिये ये अपने गहने बेच सकती हैं तो मैं भी पार्टी के लिये कुछ-न-कुछ कर ही सकता हूँ। यह मेरे साथ इन्होंने ज़्यादती की है।" रमेश के मन में बड़ी ग्लानि थी। वह लुई से ख़ुद भी तो इन मसलों पर बात कर सकता था।

"रमेश, तुम्हारी शिकायत ठीक है। लुई, तुम रमेश को अब इस बात का मौक़ा मत देना।" प्रेम ने लुई से कहा।

"रमेश बाबू, मुझे माफ़ कीजिये, अब ऐसी ग़लती नहीं होगी। मैं वादा करती हूँ।" लुई ने रमेश से कहा।

"रञ्जन, रुपन, सोना, रम्मू वग़ैरह के बारे में तुमने कुछ नहीं बताया लुई! कैसे हैं हमारे ये लोग? सोना का क्या हाल है! रुपन कभी याद करती है मुझे?" प्रेम की बातों से मालूम पड़ता था कि उसकी पुरानी स्मृतियाँ जाग उठी हैं।

"सोना अच्छी है। बड़ी शांत प्रकृति की है। तुम्हें बहुत याद करती है। रम्मू ने ताड़ी शराब बहुत कम कर दिया है। वह अब युनियन के काम में बड़ी दिलचस्पी लेता है। रञ्जन पापा के साथ ही रहता है। बूढ़ा हो गया है। बोझ उठता नहीं, पापा ने पास ही रख लिया। और रुपन अब नहीं है।" लुई ने दुख से आह भरते हुये कहा।

"क्यों क्या हुआ!" प्रेम घबरा गया। रुपन उसे बहुत मानती थी।

"उस दिन फ़ैसले के बाद उसे बोख़ार आ गया और सवेरा होते-होते चल बसी। तुम्हें सज़ा सुनाई गई तो उसे बड़ा धक्का लगा। उस धक्के से वह उबर नहीं सकी।" लुई कहने को तो कह गई लेकिन उसे पछतावा हुआ। प्रेम को इस ख़बर से कितनी तकलीफ़ हुई यह उसके चेहरे से ही ज़ाहिर था। प्रेम चुप रह गया।

रमेश ने देखा कि अगर बात न बदली जायगी तो प्रेम का दुख बढ़ता जायगा। उसने कहा, "पापा तो मज़े में हैं। कहा करते हैं, 'प्रेम डेढ़ नहीं तीन बरस जेल में रहे। मुझे कोई परवाह नहीं। मेरा प्रेम बहादुर लड़का है। मुझे उसके कामसे संतोष है। तुम लोग भी उसी के रास्ते पर चलना।' हमारे पापा कितने उदार, कितने महान् हैं!"

रमेश की बातों से प्रेम को ढाढ़स हुआ। पापा से वह ऐसी ही आशा करता था। उनके कुशल मंगल के बाद प्रेम ने रेखा की ओर देखा। रेखा अब तक चुप बैठी सबकी बातें सुन रही थी। उसके मन में कितने विचार आये और चले गये। लुई ने अपने गहने बेच दिये, यह बात उसे बहुत अखरी। उसे अपने ऊपर दया आई। उसने मन ही मन शपथ लिया कि वह अब लुई को इस प्रकार परेशान नहीं होने देगी। आख़िर उसके गहने क्या होंगे।

"मैं भी अब लुई बहिन के साथ रहती हूँ। उनके साथ मज़दूर बस्तियों में भी जाती हूँ। मैं भी काम करने लगी हूँ।" रेखा ने प्रेम को बताया।

"अच्छा, बहुत .खूब। भाई रमेश बधाई! रेखा रानी, मैं आप से माफ़ी माँगना चाहता हूँ। मैंने आपकी वजह से रमेश को कई बार खरी-खोटी सुनाई थी। मैं ग़लत फ़हमी में था। मुझे आप माफ़ करें।" विनीत भाव से प्रेम ने रेखा की ओर देखकर कहा।

"अरे प्रेम सुनो, मैंने एक काम किया है।" लुई उछलकर बोली। वह बहुत .खुश थी, "रमेश बाबू की शादी रेखा देवी से होगी। दोनों तैयार हैं। तुम क्या कहते हो?"

"इसमें भी कुछ कहने की बात है? जब गार्जियन ने एक बात तय कर दी तब फिर हम लोगों का क्या! हम तो हुक्म के बन्दे हैं।" प्रेम की ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। उसका हृदय उछल रहा था।

"प्रेम भाई, मेरी भी एक प्रार्थना है। कामरेड लुई को मैं अब भाभी कहना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या राय है।" रमेश ने मुस्करा कर कहा।

प्रेम रमेश की इस प्रार्थना के लिये तैय्यार होकर नहीं आया था। अवाक् रह गया। लुई का कुछ न पूछो। हालत ख़राब थी बेचारी की। सारी गंभीरता हवा हो गई। गार्जियन बनने चली थीं!

"आप तो मेरी बहिन हैं न! ये दोनों भैया-भैया मिल गये। तो हम बहिन-बहिन भी क्यों न एक हो जाँय?" रेखा ने लुई की तरफ़ देख कर कहा।

कोई बोला नहीं। सब चुप रहे। शायद कोई भी पहिले से सोचकर नहीं आया था कि ऐसी गंभीर परिस्थिति सामने आ जायेगी। लेकिन बात अच्छी सभी को लगी। लुई ने जब मि० यंग के साथ शादी करने से इनकार किया था तो उसने सोचा था कि 'चलो इस झंझट से जान

बची।' वह प्रेम को अपना निकटतम मित्र, साथी, गुरु सभी कुछ मानती थी। लेकिन प्रेम को उसने अपने पति के रूप में कभी नहीं देखा था। प्रेम ने लुई को अपनी, बिल्कुल अपनी समझा था। कोई दुराव, छिपाव नहीं था, कोई भिन्नता नहीं थी। दोनों अलग भी नहीं किये जा सकते थे। लेकिन उसकी लुई, उसकी जीवनसंगिनी, उसकी पत्नी होगी ऐसा उसने कभी नहीं समझा था। रमेश के प्रस्ताव से वह सिहर उठा। 'नहीं' तो कर ही नहीं सकता था। 'हाँ' करने के लिये ज़बान नहीं खुली। सभी चुप रहे।

"प्रेम भाई, आप कुछ बोले नहीं!" रमेश ने मौन तोड़ा।

"रमेश, तुम पागल तो नहीं हो गये हो। मैं जेल का क़ैदी हूँ। इस समय मैं तुम्हारा प्रस्ताव मान भी लूँ तो क्या हो सकता है ? बाहर आकर देखा जायेगा। इतनी जल्दी क्या है ?" प्रेम ने इसी प्रकार अपनी स्वीकृति दे दी।

लुई अब भी कुछ बोल न सकी। जैसे उसके मन की ही बातें हो रहीं हों। चित्र लिखित सी बैठी रही। उसके मन में बहुत सी पुरानी स्मृतियाँ जागीं और सो गईं। लेकिन गोमती के किनारे की प्रेम की वह बातें, "यह सन्नाटा, यह चाँदनी, सरिता की ये लहरियाँ और साथ में तुम··· ···।" उसने भी चिढ़कर प्रेम से कहा था, "ठीक कहते हो प्रेम, पापा को दुख होगा, तुम नीच, लम्पट, दुश्चरित्र समझे जाओगे। इसलिये मेरी शादी कर दो। पापा के सुख और अपनी इज़्ज़त के लिये मेरा बलिदान कर दो···।" लेकिन अब ? अब क्या होनेवाला है ? मेरी सबसे बड़ी लालसा, मेरी सबसे बड़ी इच्छा अब पूरी होने वाली है। लेकिन क्या मैंने प्रेम से शादी करने ही के लिये आज तक उसका साथ दिया था ? उसके पीछे चली थी ? जो भी हो अब तो प्रेम राज़ी हो गया है। 'हाँ' कह दे तो कितना अच्छा हो ?' लुई ने प्रेम की ओर आशा भरी आँखों से देखा, मानों वे विनीत और विनम्र भाव से कह रहीं हों, "मेरे स्वामी, पति, प्रेम तुम 'हाँ' कह दो!"

"लेकिन आप 'हाँ' तो कह ही सकते हैं! रस्मअदायगी बाहर आने के बाद ही होगी। इस समय तो सिर्फ़ स्वीकृति देने की बात है।" रमेश ने फिर ज़ोर दिया।

"अगर यह 'नहीं' कर दें तो?" प्रेम ने मुस्काराते हुये लुई की ओर देखा। लुई ने सर नीचा कर लिया।

"इसकी गारन्टी में लेती हूँ।" रेखा बीच में बोल उठी। "अब 'हाँ' कहिये।"

"लो मैं 'हाँ' कहता हूँ।" प्रेम ने कह दिया। अब वह लुई की तरफ़ देख नहीं सका। उसके जीवन में आज सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ था। लुई आज से उसकी सच्ची कामरेड हो गयी। राजनीतिक जीवन में तो कामरेड होते ही हैं। व्यक्तिगत जीवन में भी कामरेड हो जाने से और ही बात होती है। "अब तुम ख़ुश हो रमेश?"

"हाँ, प्रेम।" रमेश इतना ही कह सका। ख़ुशी के मारे उससे बोला नहीं जा रहा था। रेखा उठी और उसने लुई का हाँथ प्रेम के हाँथ में डाल दिया।

"मिस्टर प्रेम, समय हो गया, अब मुलाक़ात ख़त्म कीजिये!" जेलर ने कहा।

सभी चौंक उठे। प्रेम ने कहा, "अच्छी बात है। अब जाओ तुम लोग। दोनों पापा और रजन चौधरी को प्रणाम कहना। सोना का ख़्याल रखना और रम्मू का भी, जाओ।"

प्रेम अन्दर जाने लगा तो उसने घूमकर फिर देखा। रेखा और लुई हाँथ में हाँथ डाले खड़ी थीं। रमेश भावुक हो रहा था। आँख भर तीनों को देखने के बाद प्रेम अन्दर चला गया!

मि० लुई और मि० वर्मा दोनों बैठे लुई, रमेश, रेखा का इन्तज़ार कर रहे थे। मोटर अन्दर आई तो मि० लुई उठकर आगे आ गये। बोले, "कहो लुई प्रेम कैसे है! उसकी तन्दुरुस्ती कैसी है?"

"अच्छी है, .खुश थे। आप लोगों को नमस्कार कहा है।" रमेश ने बढ़कर जवाब दिया। "पापा एक .खुश ख़बरी मैं ले आया हूँ। आप बताइये आप यही चाहते थे कि इस दिसम्बर में लुई बहिन की शादी ठीक हो जाय!"

"हाँ चाहता तो था, फिर? उसकी यहाँ कैसे बात आई?" मि० लुई ने अचम्भे से पूछा। उन्हें ताज्जुब हुआ कि ये लोग तो जेल से वापस आ आ रहे हैं, बीच में ही यह शादी की बात कैसे छिड़ गई।

"क्या बात है रमेश बेटा! तुम क्या कह रहे थे अभी?" मिस्टर वर्मा बोले।

"पापा, मैं लुई की शादी की .खुश ख़बरी लाया हूँ। लेकिन कहाँ, किससे, यह जानने के लिये आपको कुछ ख़र्च करना पड़ेगा।" रमेशने उतावलेपन के साथ पापा से कह दिया।

"ख़र्च ज़रूर करूँगा, बताओ बेटे क्या बात है! मन में जानने की उत्सुकता है न!" मि० वर्मा ने जल्दी सब बातें जान लेने के लिये कहा।

"बात यह है पापा, कि मैं लुई की शादी प्रेम से ठीक कर आया। अब आप लोगों की रज़ा-मन्दी की ज़रूरत है।" रमेश ने कहा।

"अयँ, यह क्या? प्रेम की शादी लुई से? कैसे क्या हुआ! प्रेम ने 'हाँ' कहा!" मि० वर्मा इस समय हर्ष, विषाद, विस्मय तीनों की मूर्ति बन गये थे। क्या कहें कुछ समझ में नहीं आता था। प्रेम की शादी लुई से कैसे होगी! प्रेम हिन्दू, लुई ईसाई। दोनों का सम्बन्ध कैसे होगा? फिर प्रेम अभी जेल में है। लुई भी राज़ी हो गई! यह सब क्या तमाशा है! क्या मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ!" मि० वर्मा आँखें बन्द करके सोचने लगे।

"अच्छा तो होगा बाबू जी, यह जोड़ा बहुत अच्छा रहेगा।" रञ्जन बोला। उसे और किसी बात का ख़्याल नहीं आया। यही

सोचा, 'दोनों कामरेड हैं, ग़रीबों का भला करते हैं। व्याह हो जायेगा तो अच्छा रहेगा।'

मि० वर्मा ने आँख खोल एक बार रञ्जन की ओर देखा, फिर लुई की ओर ध्यान से देखा और आँख बन्द करके आराम कुर्सी पर लेट गये। ख़ुशी तो उन्हें हुई थी, लेकिन धक्का भी लगा था। कुछ भी हो, इतने उदाराशय होते हुये भी मि० वर्मा पुराने विचारों के व्यक्ति थे। अभी इतना आगे बढ़ने के लिये तैय्यार नहीं थे।

मि० लुई कुछ समझ ही नहीं पाये। यह समाचार उनके लिये अचम्भे का था। प्रेम के ऊपर वे कभी इस प्रकार का सन्देह नहीं कर सकते थे। उनका ख़्याल था कि प्रेम और लुई का सहज स्वाभाविक मेल है। इस मेल का ज़रूरी नतीजा शादी होगा इसका इन्हें गुमान भी नहीं था। लुई का प्रेम के साथ विवाह होने की बात उन्हें अच्छी नहीं लगी। प्रेम को वह बहुत मानते थे, लेकिन लुई के साथ उसकी शादी हो जाय इसके लिये वह तैय्यार नहीं थे। फिर भी वह कुछ बोल न पाये। चुपचाप लुई और रमेश की ओर देखते रहे।

"पापा, आप को ताज्जुब तो होगा, लेकिन मैं चाहती हूँ शादी करना। आप राज़ी हो जाइये।" लुई ने अपने पिता की ओर देख कर शान्त भाव से कहा। "मैं जब वहाँ मिलने गई तो मेरे मन में इस तरह का कोई भी ख़्याल नहीं था। यों ही बात आ पड़ी तो मैंने 'हाँ' कह दिया। ख़ुद प्रेम को भी ताज्जुब हुआ। आप हम दोनों को आशीर्वाद दीजिये।" लुई ने अपने पिता और मि० वर्मा की ओर ऐसे देखा, मानो वह दोनों बुज़ुर्गों से विनय कर रही हो कि उसे अनुमति मिल जानी चाहिये।

मि० लुई कुछ देर तक एक-टक कमरे की छत की ओर देखते रहे, फिर बोले, "आइये मि० वर्मा, हम लोग ज़रा घूम आवें। बेटी, तुम लोग यहीं रहो। अभी थोड़ी देर बाद हम वापस आ जायेंगे।" मि०

१०

अग्नि-पथ

कर्तव्य की वेदी पर बलिदान होने की प्रबल आकांक्षा होते हुये भी भावुक तरुण हृदय अक्सर डगमगा जाता है। जोश में आकर प्राणार्पण कर देना आसान है लेकिन अपने मार्ग पर डटे रहने के कारण स्वजनों और परिजनों की ग़लतफ़हमी और गाली को बर्दाश्त करते हुये भी बढ़ते जाने की क्षमता उसी के अन्दर होती है जिसको अपने दिल, दिमाग़ और आँखों पर भरोसा हो। शत्रु की चोट सहना आसान है। स्वजनों की बातें ज़्यादा कटु और प्राणलेवा होती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाले कर्मठ राष्ट्रभक्तों का जीवन कठोर और नीरस होता है। ऐसा भी समय आता है जब कि प्रशंसक ही घोर विरोध करने लगते हैं और अपने विरोध में उचित अनुचित का ध्यान नहीं रख पाते। ऐसे समय वही टिक सकता है जिसमें अपनी बातों की सच्चाई में पूरा भरोसा हो, जिसे अपने विरोधियों की सद्भावनाओं पर भी यक़ीन हो और जिसमें विरोध का सामना करते हुये भी अपने रास्ते पर बढ़ते जाने की हिम्मत, क्षमता और दम हो।

प्रेम जब डेढ़ साल सज़ा काटकर बाहर आया तो परिस्थिति बिल्कुल बदल चुकी थी। रमेश रेखा के साथ अपने बँगले में रहता था। बाहर आते ही प्रेम को सबकी बौछार सहनी पड़ी। रमेश ने हिम्मत के साथ इनकी बातों का सामना किया था और किसी की भी परवाह न करकेरेखा के साथ गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत कर रहा था। कहने वाले रमेश को कोस-कोस कर थक चुके थे। अब प्रेम बाहर आया तो उसे भी इन लोगों की बातें बर्दाश्त करनी पड़ीं। लेकिन प्रेम ने इनकी कुछ भी परवाह नहीं की। "बकने दो इन लोगों को। कुछ दिन में थक कर ख़ुद ही चुप हो जायेंगे। अपना काम किये जाओ। पार्टी का काम और कला का विकास दो ही चीज़ें तुम्हारे सामने होनी चाहिये। विरोध न हो तो काम करने के लिये उत्साह भी तो नहीं होता। रमेश, तुम हिम्मत और बहादुरी के साथ इन विरोधों का सामना करो। ये दिन तुम्हारी परीक्षा के हैं।" इन शब्दों में प्रेम ने रमेश को प्रोत्साहित किया।

लेकिन ख़ुद प्रेम के ऊपर भी तो लांछन लगना शुरू हो गया था। 'लुई हिन्दुस्तानी है तो क्या ? ईसाई जो है। एक ने वेश्या रख ली, दूसरे ने ईसाई लड़की चुन ली। अच्छा रहा !' प्रेम इन रिमार्कों को सुनता तो हँस देता, परन्तु शुक्लाजी ऐसे ज़िम्मेदार लोग भी जब ऐसी बात कहने लगे तो उसे क्षोभ हुआ। उसने गंभीरतापूर्वक सोचा कि इन आलोचकों को समुचित उत्तर देना ही पड़ेगा। फिर उसने सोचा, 'क्यों इन फ़िज़ूल बातों में अपना वक़्त ख़राब करूँ ? वैसे ही क्या कम काम है, हम लोगों के पास !'

पार्टी के अपने कामरेड जेलों से बाहर आने लगे थे। लुई उनके साथ रहकर नई परिस्थिति समझने लगी थी। लेकिन प्रेम को अभी बहुत कुछ समझना बाक़ी था। जेल में था तो रूस पर हमला हुआ था। उसके दिल को भी धक्का लगा था। साथी कांग्रेसी बंदियों को भी चोट लगी थी। सभी मानने लगे थे कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में

मौलिक भेद आ गया है। युद्ध की रूप-रेखा बदल रही है और उसका असर हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर भी पड़ेगा। लेकिन आगे राष्ट्र का रुख युद्ध की ओर क्या होगा इस पर स्पष्ट मत बना सकना शायद अभी सम्भव नहीं था। प्रेम ने जेल में काफ़ी सोच-विचार किया लेकिन साहित्य की कमी के कारण वह पूरी तरह परिस्थिति की समीक्षा नहीं कर सका। बाहर आते ही उसने अपना ध्यान बटोर कर अध्ययन में लगाने की सोची। उसने पहिली पुस्तक 'फ़ारवर्ड टू फ्रीडम' पढ़ी। आधी समझ में आई, आधी नहीं। प्रेम अब क्या करे! बस लग गया कामरेडों के पीछे। 'समझाओ हमें अच्छी तरह' यही वह उनसे कहता। दो महीने बाद प्रेम का रास्ता साफ़ होने लगा।

अध्ययन के साथ-साथ प्रेम जनता के बीच फिर जाने लगा था। उसे जनता को नई परिस्थिति समझाने में बड़ी दिक्कत पड़ती थी। व्यक्तिगत सत्याग्रह बन्द हो चुका था। लोग जेलों से कभी के वापस आ चुके थे लेकिन हाथ पर हाथ धरे बैठे हुये। जैसे कोई काम ही न हो। जब जापानी हमले का ख़तरा बढ़ा और आत्मरक्षा तथा स्वावलम्बन के लिये कांग्रेस ने नारा बुलन्द किया तब उनके भी हाथ पैर डोलने लगे। पार्टी ने इस काम में पूरा सहयोग दिया और महल्ले-महल्ले में रक्षा कमेटियाँ बनने लगीं। प्रेम कांग्रेस वालों से मिल कर कमेटियाँ बनाने लगा। 'आत्म-निर्भरता न हो तो लोगों की हिम्मत कम हो जायेगी। विदेशी आक्रमणकारी का मुकाबला करने के लिये सबसे ज़रूरी चीज़ यह है कि जनता का 'मोराल' ठीक रहे।' प्रेम ने ज़ोरों का प्रचार आरम्भ किया। वह जनता को हवाई हमले से हिफ़ाजत, भीड़ पर कन्ट्रोल रखना, हमले के समय किस तरह इन्तज़ाम करना चाहिये, इन बातों को बताता। छापे-मार सिपाही किस प्रकार जनता के बीच में छिपे रह कर आक्रमणकारी का मुक़ाबिला करते हैं और उनकी कमर तोड़ देते हैं इसको भी वह मुहल्ला कमेटियों में बताया करता। चीन और रूस

की मिसाल देकर वह साबित करता कि किस प्रकार ये बातें सम्भव हो सकती हैं।

भारतीय राजनीति में भी मौलिक परिवर्तन आया। स्वतन्त्रता-संग्राम से ध्यान खिंच कर स्वदेश-रक्षा की ओर आया। अगर स्वदेश-रक्षा के लिये राष्ट्र को तैय्यार न किया जाय, उसकी सोई हुई आत्मा को न जगाया जाय तो सारा देश अपनी आज़ादी और मुक्ति के लिये जापान की ओर ताकने लगेगा। यह बड़ी ख़तरनाक बात होगी। स्वदेश-रक्षा का प्रश्न सबसे मुख्य प्रश्न है।

इस प्रश्न का एक ही हल है. वह है राष्ट्रीय सरकार। राष्ट्रीय सरकार नौकर शाही के हाथों से कैसे छीनी जाय यही समस्या देश के सामने थी।

क्रिप्स आये और चले गये। राष्ट्र को वे कुछ दे न सके। उनके जाने के बाद देश में रोष बहुत बढ़ गया। वापस लौट कर क्रिप्स महाशय के बयानों ने जले पर नमक का काम किया। लेकिन पार्टी ने साफ़ कहा कि इस समय सब्र से काम लेना चाहिये। कोई भी ऐसा काम करना जिससे स्वदेश-रक्षा के साधनों में किसी प्रकार की बाधा पहुँचे, ग़लत होगा। ऐसा करके हम शासकों के हाथों में खेल जायेंगे, जनता नेतृत्व-विहीन हो जायेगी और देश का 'मोराल' ख़त्म हो जायेगा। इस प्रकार हम अपनी ग़लतियों के कारण जापान के आने के लिये अनुकूल वातारण तैय्यार कर देंगे।

शुक्ला जी और प्रेम में कई बार इस विषय पर बात-चीत और बहस हुई। शुक्ला जी हमेशा यही कहते कि "इस समय मौक़ा अच्छा हैं, अपने स्वत्वों को छीन लेना चाहिये और तब जापान का मुक़ाबिला करना चाहिये।" प्रेम उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों दृष्टिकोणों से समझाता कि "ऐसा करना इस समय बड़ी भूल होगी। शासक तो चाहते ही हैं कि हम कोई ऐसा काम कर बैठें जिससे कि उन्हें हमें बदनाम करने का और जेल में बन्द कर देने का बहाना मिल जाये। इस समय

संघर्ष की बात न करके हमें स्वदेश-रक्षा के साधनों को मज़बूत करने की बात करनी चाहिये। इन बातों का नतीजा यह होगा कि हम अपनी जनता को संगठित कर सकेंगे, हिन्दू मुसलमानों को एक कर सकेंगे और शासकों से ज़बर्दस्ती राष्ट्रीय सरकार छीन सकेंगे।" बहस का नतीजा कुछ नहीं होता। शुक्ला जी साफ़-साफ़ कहने लगते "भाई, तुम कम्युनिस्टों का देश तो रूस है। रूस जिधर, उधर तुम। तुम्हें इस अभागे हिन्दुस्तान देश से क्या सरोकार!" इसी बात पर बहस ख़त्म हो जाती।

रेखा और लुई औरतों में जातीं और उनकी समितियाँ बनातीं। मज़दूरों की बस्तियों की औरतों का तो उन्होंने संगठन कर लिया, लेकिन बाक़ी शहर में उन्हें सफलता कम मिली। वहाँ उनके नारों पर काफ़ी बहस होती, बाल की खाल निकाली जाती, लम्बे-लम्बे तर्क दिये जाते लेकिन नतीजा कुछ न निकलता। लुई कभी-कभी इन औरतों की लम्बी-लम्बी बातों से ऊब जाती। लेकिन काम तो उसे करना ही था, ऊबने से फ़ायदा ही क्या था? गर्मी, धूप, लू सब कुछ बर्दाश्त करके रेखा को साथ में लिए लुई सड़कों और गलियों में मारी-मारी फिरती।

उस दिन लुई घर आई तो उसे बोख़ार हो आया। शायद लू लग गई थी। उसका बदन काला पड़ गया था। बोख़ार ज़्यादा था। उसने रेखा को भेजा कि वह प्रेम को बुला लाये। प्रेम कहीं बाहर गया हुआ था, उसे आने में देर लगी। रेखा ने डाक्टर को फ़ोन किया। इसी बीच में प्रेम भी आ पहुँचा। साथ में शुक्ला जी भी थे।

"नमस्कार शुक्ला जी।"

"नमस्कार कामरेड लुई। आपकी तबीयत कैसी है? आप पड़ी क्यों हुई हैं?" शुक्ला जी ने सहानुभूति दिखलाते हुये पूछा।

"कुछ नहीं यों ही, ज़रा बोख़ार हो आया है। शायद लू लग गई।" लुई ने उत्तर दिया।

"आप भी तो नाहक़ इस तरह धूप में दौड़-दौड़ कर जान दिये देती हैं। क्या फ़ायदा फ़िज़ूल इस तरह तन्दुरुस्ती ख़राब करने से ?"

"शुक्ला जी, आप से मैं ऐसी बातों की आशा नहीं करती। आप शहर कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री हैं। आप राजनीति समझते हैं। इस समय देश किस भयंकर स्थिति से गुज़र रहा है इसे भी आप अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी आप कहते हैं यह सब फ़िज़ूल काम है। आश्चर्य होता है।" लुई शुक्ला जी की बातों से कुछ चिढ़ गई थी। उसे ताज्जुब हुआ कि शुक्ला जी ऐसी बातें कैसे कह रहे हैं। प्रेम के मना करने पर लुई शांत हो गई।

"लेकिन आपने प्रो० शर्मा के घर में भाषण देते हुये यह कहा था कि 'गाँधी जी जुआ खेलने जा रहे हैं।' आप समझती हैं कि महात्मा गाँधी देश के भाग्य के साथ जुआ खेलेंगे ? आपकी पार्टी उनसे ज़्यादा राजनीति समझती है ?" शुक्ला जी भी तैश में आ रहे थे।

"जी हाँ, जब कि हमारे शासक स्वयं चाहते हैं कि हम कोई ऐसा काम करें जिससे वे हमें बदनाम कर सकें, जापानी हमलावरों का समर्थक कह कर जेल में बन्द कर सकें, 'हिन्दुस्तान छोड़ो' का नारा देना ग़लत नहीं तो और क्या है ! देश-रक्षा के साधनों को मज़बूत करने के बजाय उन्हें कमज़ोर करने की बात सोचना ग़लत नहीं है ! गांधी जी की दूरदर्शिता में किसी को शक नहीं हो सकता। सब जानते हैं कि वह इस समय देश के सबसे महान् नेता हैं। लेकिन क्या वह ग़लती कर ही नहीं सकते ! छोड़िये गांधी जी को। मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या यह रास्ता ग़लत नहीं है ?" लुई ने शुक्ला जी की ओर घूर कर देखा। उसका बोख़ार बढ़ रहा था। शुक्ला जी ने सोचा, 'ऐसी हालत में बहस करने से इनको कष्ट होगा'। बोले, "अच्छी बात है, आपकी तबीयत ठीक हो जायगी तो आपसे फिर बात-चीत होगी। इस समय आराम कीजिये।"

रमेश डाक्टर को लेकर आ गया तो 'शुक्ला जी ने उनका अभिवादन किया। डाक्टर साहब ने लुई को अच्छी तरह देखा। दवा लिखकर चले गये। शुक्ला जी ने कहा, "कामरेड प्रेम, मुझे अफ़सोस है, मैं ज़रा तैश में आ गया और इनसे बहस कर डाली। इस समय इसके लिये मौक़ा नहीं था। इनकी देखभाल रखना। किसी बात की ज़रूरत हो तो फ़ौरन मुझे फ़ोन कर देना। अच्छा, अब मैं जा रहा हूँ। नमस्कार!"

"नमस्कार" प्रेम ने कहा। उसे शुक्ला जी की बहस बेमौक़ा लगी थी। लुई चुप-चाप आँखें बन्द करके लेटी रही।

सबका ख़्याल था कि लुई की तबियत जल्दी अच्छी हो जायेगी। लेकिन एक महीने के बाद भी बोख़ार छूटा नहीं। लुई बहुत कमज़ोर हो गई। रमेश और रेखा बारी-बारी से उसकी परिचर्या करते थे। शुक्लाजी भी दूसरे-तीसरे देख जाया करते थे। प्रेम की चिन्ता बढ़ गई। बोख़ार जड़ पकड़ गया क्या! अच्छे से अच्छे डाक्टर बुलाये गये। फ़ायदा तो हुआ। लेकिन बुख़ार एकदम छूटा नहीं। इधर-उधर दौड़-धूप करने के बाद प्रेम घर आकर लुई को देख जाता। पार्टी ने छुट्टी देना चाहा, लेकिन प्रेम इसकी ज़रूरत नहीं समझता था। बेकार काम में हर्ज होगा। रमेश और रेखा तो हैं ही।

पापा के पास तार देना ठीक नहीं होगा। ख़त तो बराबर जाते ही हैं। उनको ख़त लिख दिया जाय कि आकर लुई को देख जाँय। यह बात सभी ने मंजूर कर ली। मि० लुई ने जब लुई को बिस्तर पर लेटे देखा तो वह काँप गये। लुई की शकल बिल्कुल बदल गई थी। वह बहुत दुबली हो गई थी। राय हुई कि उसे मेडिकल कालेज के किसी अच्छे डाक्टर को दिखाया जाय।

मेडिकल कालेज पहुँच कर लुई की तबियत कुछ ठीक होने लगी। लेकिन अभी बिस्तर से हिलने-डुलने की शक्ति उसमें नहीं थी। पड़ी-पड़ी अख़बार सुनती या प्रेम से काम के बारे में पूछ लिया करती। उसे दुख था कि 'ऐसे समय जब कि हमें गलियों और सड़कों पर घूम-

घूम कर पार्टी के नारों का प्रचार करना चाहिये मैं बिस्तर पर पड़ी हूँ।' ग्लानि और क्षोभ से उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

"प्रेम, कब तक पड़ी रहूँगी मैं बिस्तर पर ? अच्छी होती तो तुम्हारी कुछ मदद ही करती !" लुई ने धीमी आवाज़ में प्रेम से कहा। उसकी आवाज़ में करुणा और विवशता थी।

"घबराओ नहीं लुई, अब तो तुम्हारी तबियत ठीक हो रही है। जल्दी ही अच्छी हो जाओगी।" प्रेम ने संतोष दिलाते हुये कहा।

"काम ठीक सब हो रहा है ?"

"हाँ, हो रहा है। तुम चिन्ता न करो। अच्छी होकर तुम पार्टी का ज़्यादा काम कर सकोगी।"

"जी ऊबता है प्रेम, जल्दी अच्छी हो जाऊँ तो तुम्हारी तरह मैं भी काम करूँ। काँग्रेस ने क्या तय किया ? वर्धा में क्या हुआ ? रेडिओ सुना तुम ने ?"

"हाँ, परिस्थिति गंभीर है। प्रस्ताव का कुछ अंश तो अच्छा है। लेकिन आन्दोलन चलाने की स्कीम मालूम पड़ती है। ऐसा होगा, तो बड़ी मुश्किल होगी। जापानी दाँत लगाये हुये हैं। मौक़ा मिलते ही चील की तरह झपट पड़ेंगे।" प्रेम थोड़े में सब कुछ कह कर ख़त्म करना चाहता था। लेकिन लुई की उत्सुकता कुछ और जानने की थी।

"अब की 'पीपुल्स वार' में क्या आया ?"

"लुई, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। बहुत चिन्ता न करो। अच्छी होकर ख़ूब काम करना।" प्रेम ने टालने के लिये कहा।

"थोड़े में बता दो, प्रेम दया करो।" लुई ने विनय की।

"पार्टी का रुख़ साफ़ है। अगर आन्दोलन चला तो पार्टी उसका साथ नहीं देगी। जनता के बीच में रहकर वह उसे आक्रमणों और गोलियों की बौछारों से बचायेगी।"

"क्या आन्दोलन ज़रूर चलेगा ?"

"हाँ, उम्मीद तो यही है। सरकार भी तैयार बैठी है।"

लूई ने आँखें बन्द कर लीं। वह अब थक गई थी। पड़ी-पड़ी सोचती रही, 'अगर पार्टी ने साथ न दिया तो वह बदनाम हो जाएगी। देश-भक्त उसे बुरा भला कहेंगे। इतने दिनों का किया कराया काम बेकार हो जायेगा।' जनता की बर्बादी का नक्शा उसकी आंखों के आगे आ गया। 'ग़ल्ले-कपड़े की महँगी और ऊपर से यह सार्वदेशिक उथल-पुथल! जनता का क्षोभ और ग़ुस्सा उसे न जाने किधर ले जाय! क्या होने वाला है अब? जापान तो इसी घड़ी का इन्तज़ार कर रहा था।' लुई ध्यान मग्न यही सब सोचती पड़ी रही।

एक हफ़्ता और गुज़रा। अब लुई की हालत कुछ अच्छी थी। पापा लौट जाना चाहते थे, लेकिन लुई ने उन्हें रोक लिया। पापा ने तार देकर छुट्टी बढ़वा ली। बम्बई की कांग्रेस की ओर सबकी आंखें लगी हुई थीं। लुई दो बार रेडियो की ख़बर पूछती। आठ की शाम के रेडियो में ख़बर आई, 'प्रस्ताव पास हो गया। गांधी जी आन्दोलन के संचालन के लिये एकमात्र नेता बनाये गये।'

"प्रेम, अब क्या होगा?" लूई ने उदास होकर पूछा।

"वही, जो हमारे अभागे देश की क़िस्मत में लिखा है।" प्रेम बहुत उदास था। आख़िरी मिनट तक वह सोचता था कि शायद वर्किंग-कमेटी अपना फ़ैसला बदल दे। लेकिन ऐसा सोचना उसकी ग़लती थी। वर्धा के प्रस्ताव को बम्बई में पास करना ही था! इसीलिये तो देश भर के नेता बुलाये गये थे।

लुई रात भर जागती रही। लाख कोशिश करने पर भी उसे नींद नहीं आई। रमेश, रेखा, प्रेम, सभी जागते रह गये। सबका कलेजा धड़क रहा था। किसी तरह सवेरा हुआ। रेडियो की ख़बर आई 'गाँधी जी पकड़ गये!' अब क्या था! सारे देश में आग लग गई।

प्रेम ने साइकिल सँभाली और पार्टी दफ़्तर पहुँचा। आपस में बात-चीत हुई, प्रोग्राम बना और सभी अपने काम में लग गये। प्रेम भूत की तरह इधर-उधर भागता फिरा। धड़ाधड़ गिरफ़्तारियाँ हो रही थीं। दोपहर होते-होते शहर के सारे नेता गिरफ़्तार हो गये। शुक्ला जी, प्रोफ़ेसर शर्मा वग़ैरह तो सवेरे ही पकड़े जा चुके थे। सनसनी थी पूरे शहर में। कोई भी गिरफ़्तार हो सकता था। प्रेम इधर-से-उधर भागता फिरा। बीच-बीच में दफ़्तर में आकर रिपोर्ट दे दिया करता था।

तीसरे रोज़ विद्यार्थियों का जलूस निकला। रात भर प्रेम समझाता रहा,'जलूस मत निकालो, बेकार गोलियाँ चलवाने से क्या फ़ायदा ?' पर गालियों की बौछार के सिवाय प्रेम को और कुछ नहीं मिला। ग़द्दार, देशद्रोही, सी० आई० डी० आदि की उपाधियों से सुशोभित हो प्रेम सवेरे घर आया। वह बहुत उदास और थका हुआ था।

"कहाँ रह गये थे तुम दो रोज़ तक, हम लोग तो बिल्कुल घबरा गये थे।' रमेश ने कहा

"आ गये प्रेम !" लुई ने पूछा।

"हाँ, परिस्थिति भयानक है। विद्यार्थी मानते नहीं। जलूस निकालने पर उतारू हैं। दस बजे जलूस कचहरी की ओर जायेगा। पुलिस की काफ़ी तैय्यारी है। समझ में नहीं आता क्या होगा ? मैं अभी जाऊँगा वहीं।" प्रेम की बातों से चिन्ता, विह्वलता और विषाद टपक रहा था, जैसे वह भविष्य की घटनाओं को देख रहा हो।

"प्रेम, मैं भी चलूँगा साथ में। तुम अकेले कहाँ जाओगे ? अकेले जाना ठीक नहीं।" रमेश ने कहा।

"मेरे लिये क्या कहते हो प्रेम, मैं क्या योंही पड़ी रहूँगी ! मेरा जी घबरा रहा है। मुझे भी लेते चलो साथ।" लुई ने प्रार्थना की। वह उठ कर चारपाई पर बैठ गई थी।

"पागल तो नहीं हो गई हो, कहाँ जाओगी ऐसी हालत में ? हिलडुल तो सकतीं नहीं, चलोंगी जलूस में ! रेखा रानी, तुम इन्हें उठने मत

देना। मैं जाता हूँ। चलो रमेश!" कह कर प्रेम फिर ग़ायब हो गया।

"क्या प्रेम आया था?" मि० लुई ने अन्दर आकर कहा। प्रेम की आवाज़ उनके कानों तक पहुँची थी। "कहाँ है प्रेम?"

"अभी चले गये पापा, आज जलूस निकलेगा दस बजे।" लुई ने सर नीचे करके कहा। उसका कलेजा धड़क रहा था।

"तुमने रोका नहीं? वहाँ कुछ हो गया तो?"

लुई चुप रही, क्या कहती बेचारी।

"और रमेश कहाँ है? वह भी साथ ही गया है?"

"हाँ।" लुई ने कहा

"ओफ़, अब क्या होगा? क्या करने वाले हैं ये लड़के?" मि० लुई बहुत चंचल हो उठे। बरामदे में टहलते हुये सोचते रहे, "अब क्या होगा? क्या किया जाय? कुछ समझ में नहीं आता! ओह!…"

प्रेम फ़ौरन दफ़्तर पहुँचा। पार्टी सेक्रटरी टेबुल के पास बैठे उसी का इन्तज़ार कर रहे थे।

"हलो, क्या हाल है?"

"दस बजे जलूस निकलेगा। हमें क्या करना चाहिये?" प्रेम ने पूछा।

"जलूस के साथ रहो, पुलिस की लाठियों और गोलियों से लोगों को बचाओ। हमें जनता और पुलिस के बीच रहना है।" कामरेड सेक्रटरी गंभीर भाव से कहा।

"आल राइट, लाल सलाम कह कर प्रेम ने रमेश को साथ लिया। प्रेम युनिवर्सिटी पहुँचा। जलूस की तैय्यारी हो रही थी। वह विद्यार्थियों के झुण्डों में जाकर समझाता, "भाई अब भी मान जाओ, बेकार क्यों जान देते हो?"

"दूर हो, बदमाश, ग़द्दार, पाजी, कायर, देशद्रोही!"

प्रेम यही गालियाँ और फटकार रात-भर सुनता रहा । वह विद्यार्थियों का नेता रह चुका था । उन्हीं साथियों की गालियाँ वह इस समय सुन रहा था। रमेश को बहुत बुरा लगा । ग़ुस्से की वजह से वह काँप रहा था । लेकिन प्रेम को हँसता-मुस्कराता देख वह चुप ही रहा ।

जलूस चला तो प्रेम आगे-आगे था । विद्यार्थियों ने उसे खींच कर जलूस से अलग कर दिया । वह इस खींचातानी में कई बार गिर भी पड़ा । रमेश को भी कुछ उद्धत लड़कों ने एक दो चपत लगा दी । लेकिन रमेश प्रेम के पीछे ही लगा रहा ।

जलूस चला जा रहा था। विद्यार्थियों का जोश बढ़ता जा रहा था । नारों और जयकार से आसमान फटा पड़ता था । अब आगे सशस्त्र पुलिस की क़तार थी । विद्यार्थियों के जोश में उबाल आया । नारे और ज़ोर से लगे । सहस्रों तरुणों के गगन भेदी स्वरों से पुलिस का भी कलेजा दहल उठा ।

"बस रुक जाओ । आगे मत बढ़ जाना । २ मिनट में वापस चले जाओ, वरना गोली चलाई जायेगी ।"

लड़कों का जोश और बढ़ा । पीछे कौन हटता ? आगे-आगे प्रेम और रमेश दीवानों की तरह भाग-दौड़, रोकथाम कर रहे थे, पीछे सहस्रों विद्यार्थियों का समूह समुद्र की गंभीर लहरों की तरह उमड़ता चला आ रहा था ।

गोलियाँ चलीं । धड़ाधड़ लोग गिरने लगे । लाठियों की वर्षा हुई । हड्डी की चरमाराहट सुनाई पड़ी !······थोड़ी देर में भीड़ काई की तरह छटने लगी । विद्यार्थियों के दल में भगदड़ मच गई । घायल विद्यार्थियों को भी लाद-फाँद कर जलूस के लोग धीरे-धीरे ग़ायब हो गये ।

प्रेम बेहोश पड़ा था । सर फूट गया था । जाँघ में गोली लगी थी । फ़ौव्वारे की तरह ख़ून जारी था । रमेश को भीतरी चोट लगी थी । धीरे-धीरे कराह रहा था ।

मि० लुई मोटर लेकर घटनास्थल पर पहुँचे तो दोनों को सड़क के किनारे बेहोश पड़ा पाया। दूर से दो मशस्त्र पुलिस के सिपाही खड़े तमाशा देख रहे थे। मि० लुई ने हिम्मत बटोर कर प्रेम को मोटर में लिटाया, फिर रमेश को भी गद्दे के सहारे बिठाया। मोटर दोनों घायलों को लेकर 'शंकर विला' की ओर चल दी!

लुई को ख़बर लगी तो वह बेहोश हो गई। बीमारी से जर्जर शरीर, इस आघात को सह नहीं सकी। रेखा चुप, एकदम चुप रह गई जैसे काठ मार गया हो। उसकी आँखें खुली थीं लेकिन दिमाग़ काम नहीं कर रहा था। संज्ञा-शून्य-सी देखती रह गई प्रेम और रमेश को!

डाक्टर ने मरहम पट्टी की। रमेश को दर्द बहुत था। लेकिन वह होश में था। प्रेम अब भी यों ही पड़ा था, बेहोश, बिल्कुल बेहोश। डाक्टर बार-बार नाड़ी देखते और दवा देते! रमेश की आँखों से आँसू की धारा बह निकली! अपने दर्द की वजह से नहीं, प्रेम को देख कर!

पागल की तरह मि० लुई बरामदे में टहलते रहे। दो-दो, चार-चार मिनट पर अन्दर झाँक लेते। डाक्टर लगातार दवा देते रहे। सहसा प्रेम की आँख खुलने लगी। डाक्टर खुश हो गया। मि० लुई भी अन्दर आये। प्रेम का हाल देखा तो उनमें जान आ गई। लुई की क्षणिक बेहोशी भी दूर हो चुकी थी। आँख खोलकर उसने देखा प्रेम को पट्टियाँ बँधी हैं। चारपाई पर पड़ा धीरे-धीरे कराह रहा है। प्रेम और रमेश दोनों को पास-पास पट्टियाँ बँधे कराहते हुये देख कर लुई का दिल रो उठा। रेखा लुई के सरहाने चुपचाप बैठी सारा दृश्य देख रही थी। क्या करे यह रेखा की समझ में अब भी नहीं आया।

"मि० प्रेम" सब की आँखें बरामदे की ओर उठ गईं। मि० आलम दलबल के साथ खड़े थे। "मुझे अफ़सोस है मैं मि० प्रेम और मि० रमेश को गिरफ़्तार करने आया हूँ।" मि० आलम ने कहा। प्रेम चौंका जैसे वह सोते से जग गया हो। रमेश ने मि० आलम की ओर देखा

ओर मुँह फेर लिया। लुई आवेश में आ गई, लेकिन कुछ बोली नहीं।

"अभी ले जायेंगे आप?" रेखा ने पूछा। अपने आवेश को दबा कर शांत भाव प्रगट करती हुई रेखा इतना ही पूछ सकी।

"हाँ, मुझे अफ़सोस है। अभी जाना पड़ेगा। मुझे हुक्म है।" मि० आलम ने सर नीचा करके कहा!

"लेकिन इनकी हालत तो ऐसी नहीं है कि इन्हें हिलाया डुलाया जा सके।" डाक्टर साहब ने विनय-पूर्वक कहा।

"मैंने कहा न? मुझे आर्डर है कि ये लोग जहाँ कहीं, किसी भी हालत में मिलें फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिये जायँ। मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।" मि० आलम ने कठोर दृढ़ता के साथ कहा।

"आल राइट, ले जाइये मेरे बच्चों को। मुझे कुछ भी पर्वाह नहीं। रेखा, लुई, नेवर माइन्ड!" मि० लुई के होंठ ग़ुस्से से काँप रहे थे। उन्होंने ज़ोर से कहा।

लारी में बैठा कर ले जाते समय मि० आलम ने कहा, "मैं जेल में हिदायत कर दूँगा कि इनको अस्पताल में ही रखा जाय।"

मोटर की आवाज़ सुन कर लुई धीमे से बोली "ले गये?"

"हाँ" रेखा ने कहा।

× × ×

जेल के फाटक पर पहुँचते ही अन्दर ख़बर पहुँच गई। सभी उत्सुक थे जानने के लिये, "कौन आया?" सब को पता था कि आज जलूस निकलेगा। विद्यार्थियों के झुण्ड के झुण्ड आयेंगे जेल में—सब यही सोचते थे। मालूम हुआ कि ये विद्यार्थी नहीं हैं तो ताज्जुब हुआ। फिर कौन हैं?—कम्युनिस्ट।

ग़द्दार, देशद्रोही!

शुक्ला जी समझ गये प्रेम आया होगा। वह कैसे ऐसे मौक़ों पर पीछे रह सकता है? भागे हुये सीधे अस्पताल पहुँचे। प्रेम और रमेश को देखा तो आँखों में आँसू उमड़ आये।

प्रेम ने धीरे से हाँथ जोड़ कर कहा, "नमस्कार।"

"नमस्कार, कामरेड।" शुक्लाजी कुछ और नहीं बोल सके। इन दो नौजवान साथियों को इस दशा में देखकर शुक्लाजी का कलेजा फटा जा रहा था। पीठ थपथपा कर डाक्टर साहब से बातें करने लगे।

थोड़ी देर तक प्रेम आँखें बन्द किये पड़ा रहा। गर्म दूध जब डाक्टर ने पिलाया तो उसे जान सी आ गई। उसने करवट बदल कर पूछा, "रमेश, कैसी तबियत है तुम्हारी?"

"ठीक है भैया, बोलो मत, तुम्हें तकलीफ़ होगी।" रमेश ने कराहते हुये कहा।

प्रेम ने फिर आँखें बन्द कर लीं।

शाम को शुक्लाजी चले गये। थोड़ी देर बाद एक महाशय उसी हाल में बन्द किये गये। इन्हें सर दर्द का दौरा होता था।

भव्यमूर्ति! ढलती जवानी, अधपके सँवारे हुये बाल, चौड़े माथे पर तीन रेखायें, छोटी परन्तु भावपूर्ण रसभरी आँखें, उनपर चश्मा लगा हुआ, चौड़ी छाती, ऊँचा कंधा, चेहरे पर सहज मुस्कान! उम्र रही होगी, कोई छत्तीस-सैंतीस बरस की! भव्यमूर्ति, आकर्षक, प्राणदायिनी!

"आप······आपका परिचय?" प्रेम ने सहमकर संकोच से पूछा।

"आराम से लेटे रहो, मैं तुम्हारा साथी, भाई हूँ। बस!" मुस्कराते हुये ये महाशय बोले।

रमेश ने करवट बदली। इस कारागार में, इस अस्पताल में इतनी आत्मीयता! रमेश ने देखा—वह मुस्करा रहे थे।

"कैसी तबियत है तुम्हारी? अपना नाम बताओ।" प्रेम के गुलाबी गालों पर एक हल्की सी चपत लगाकर वे बोले, "तुम तो कम्युनिस्ट हो?"

"हाँ कम्युनिस्ट हूँ। मेरा नाम प्रेम है। यह मेरा साथी रमेश है। यह भी कम्युनिस्ट है। अभी पार्टी-मेम्बर नहीं है। होनेवाला था कि

यहाँ चला आया। तबियत ठीक है।" प्रेम ने हर प्रश्न का उत्तर वैसे ही सादगी से दे दिया जैसे स्कूल के बच्चे अपने पिता के सामने पड़ जाते हैं तो जल्दी-जल्दी थोड़े में सब बात खत्म कर के जान छुड़ा लेते हैं।

"मैं भी कम्युनिस्ट हूँ। जेल में हूँ इसलिये पार्टी-मेम्बर नहीं हो सका। निकलते ही पार्टी-मेम्बरी के लिये अर्ज़ी दूँगा।"

"कब छूटेंगे आप ? कब आये थे ?" रमेश ने कहा। वह अपनी उत्सुकता रोक नहीं सका।

"लम्बी कहानी है। पन्द्रह बरस से जेल में ही हूँ। दो तीन बरस बाद छूटूँगा शायद" कामरेड भी इतनी सादगी से कह गये गोया कोई बहुत मामूली बात हो।

"कामरेड, आप अपना नाम बता दें अब ?" प्रेम ने विनम्र होकर कहा।

"मेरा नाम अशोक है।"

"अशोक दादा, बहुत अच्छा।" प्रेम ने कहा। रमेश और प्रेम दोनों को बहुत सुख मिला। बहुत देर तक अशोक दादा के साथ दोनों बातें करते रहे। रात अधिक हो चली तो सोने की तैयारी हुई।

कामरेड अशोक अपना सर दर्द भूल गये। दोनों घायल कामरेडों की परिचर्या और सेवा में उनकी रात कट गई।

शुल्का जी रोज़ अस्पताल में आकर प्रेम और रमेश को देख जाते। कुछ खाने-पीने का सामान भी देकर वापस जाते। पन्द्रह दिन बाद तीनों अपने बैरक में लाये गये। अशोक दादा का सर दर्द उनकी आँखों की वजह से था। साल में एक दो बार अवश्य उन्हें दौरा होता, उस समय वे बेहाल हो जाते थे। दौरा ख़त्म होने पर नई ज़िन्दगी होती। रमेश का दर्द ठीक हो गया था। प्रेम का घाव पुर गया था। सर में थोड़ा सा घाव था, लेकिन उसकी मरहम पट्टी बैरक में हो सकती थी। इसलिये तीनों को डाक्टर साहब ने अस्ताल से डिस्चार्ज कर दिया।

बैरक में और सर्किल में उनके स्वागत की पूरी तैय्यारी थी। कुछ मन-चले नोजवान भी फँस फँसा कर जेल आ गये थे। 'कम्युनिस्टों को जितनी भी गाली दो आज़ादी उतनी ही नज़दीक आएगी।' इस दर्शन को मानने वालों की तायदाद बढ़ती जा रही थी। लीडरों की देख-रेख में इसी प्रकार का प्रोग्राम बना था। सर्किल में क़दम रखते ही रिमार्क होने लगे "आगये कामरेड लोग।"

"अरे क्या बातें करते हो, सरकारी एजेन्ट हैं समुरे, पता नहीं यहाँ किस काम के लिये भेजे गये हैं!"

"सोशल बायकाट करो इनका।"

"बड़े दुश्चरित्र होते हैं ये कम्युनिस्ट। गोरे वाले ने इसाई लौंडिया रखली है और उसने जो, उसके बग़ल में है, रण्डी से ब्याह किया है। इसी चरित्र के साथ राजनीति में काम करने चले हैं: हिन्दुस्तान कोई योरप है!"

इन रिमार्कों को सुनकर प्रेम और रमेश दोनों घबरा गये। 'ये हमारे साथी राजनीतिक कार्य-कर्ता हैं या शोहदे, लुंगाड़े' प्रेम ने सोचा। 'इन लोगों में साधारण मनुष्यता भी नहीं है!'

अशोक दादा प्रेम और रमेश को साथ ही लिये अपने बैरक में आये। एक ही कमरे में दोनों के रहने का इन्तज़ाम कर दिया। चाय की प्याली हाथ में लिये बोले,

"कामरेड्स चाय पियो। क्यों प्रेम, तुम इतने उदास क्यों हो! रमेश, क्या बात है?" अशोक दादा ने पूछा।

"कुछ बात नहीं ज़रा इन लोगो के रिमार्कों पर ग़ौर कर रहा था। मतभेद के माने यह तो नहीं है कि इस प्रकार गाली दी जाय।" प्रेम ने कहा।

"यह भी कोई शराफ़त है!" रमेश को बहुत ग़ुस्सा आ गया गया था। "इनको तो मुँहतोड़ जवाब देना चाहिये।"

"क्या बातें करते हो!" कामरेड अशोक ने मुस्कराते हुये कहा। "ज़रा-सी गालियों से घबरा गये ? यही क्या कम है कि मार नहीं पड़ी। बैरक में रख लिये गये यह भी ख़ास कृपा थी इन महानुभावों की। बहरहाल, छोड़ो इन बातों को। नाराज़ होने से काम नहीं चलेगा। आज हमारी पार्टी धारा के प्रतिकूल चल रही है। इसे इन विरोधों का सामना करना पड़ेगा। जब ये हमारे पथ-भूले भाई अपने अनुभवों से समझ लेंगे कि हमारा रास्ता ठीक था तब इन्हीं गालियों के बदले प्रशंसा मिलेगी। यहाँ, जेल में भी हमें बैठना नहीं है। इनसे मिलजुल कर इन्हें अपनी नीति हम समझावेंगे। तुम लोगों की तबियत ठीक हो जाय तो पढ़ाई-लिखाई वग़ैरह का इन्तज़ाम किया जाय।" अशोक दादा ऐसे बोल रहे थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। ऐसी गालियाँ वे कई बार सुन चुके थे। आदी हो गये थे। 'चट्टान से लहरें टक्कर लेती हैं और मुँहकी खाकर वापस चली जाती हैं। कम्युनिस्टों को ऐसा ही होना चाहिये।' यही धारणा थी अशोक दादा की, इसीलिये वे इन गालियों को महत्व नहीं देते थे !

आठ महीने के अथक प्रयत्नों के बाद अशोक दादा, प्रेम और और रमेश सहवासी बन्दियों को अपनी ओर खींचने में समर्थ हुये। राजनीतिक वातावरण के परिवर्तन के साथ ही साथ जेलवासियों के रुख़ में भी परिवर्तन आना आवश्यक था। गांधीजी के पत्रों ने भी अपना काम किया। लम्बी चौड़ी डींग हाँकनेवालों के होश दुरुस्त हुये। अब आपसी सम्बन्ध और बातचीत में वह कटुता नहीं रही। अधिक दिन जेल जीवन बिताने पर सुस्ती आ ही जाती है। उस समय बन्दी अपनी पढ़ाई-लिखाई खेल-कूद में ज़्यादा लग जाते हैं। जेल जीवन के आख़िरी दिनों में ऐसा ही वातावरण रहा। प्रेम की गम्भीरता और अध्ययनशीलता, रमेश की भावुक सहृदयता और अशोक दादा की व्यवहार कुशलता ने साथी बन्दियों पर प्रभाव डाला और जब प्रेम और रमेश के छूटने की ख़बर आई, तो विदा करनेवालों के चेहरों से

साफ़ टपक रहा था कि वे अपने ओछेपन के लिये शर्मिन्दा हैं। शुक्लाजी ने पीठ ठोकते हुये कहा—

"प्रेम, तुम लोग खरे सोने हो। काम में जुट जाने और विरोधों की पर्वाह न करने की सबक़ तुम लोगों से हमें लेनी चाहिये। मतभेद की बात जाने दो। राजनीतिक जीवन में संघर्ष तो होता ही है। अच्छा जाओ।"

प्रेम के लिये ये शब्द नये नहीं थे। शुक्लाजी कम्युनिस्टों से बहुत नाराज़ थे और बार-बार वे अपना मतभेद प्रगट कर चुके थे। लेकिन जब विरोधियों ने बहुत नीचे उतरना चाहा तो वे उनसे अलग हो गये। शुक्लाजी के लिये सभी कामरेडों के हृदय में श्रद्धा थी।

प्रेम ने शुक्लाजी को नमस्कार किया। वह बारी-बारी से सब से मिला। रमेश भी सब से मिला लेकिन सच पूछो तो उसके हृदय में इन लोगों से गले मिलने की इच्छा नहीं होती थी।

"दादा, जा रहे हैं हम लोग। कब आयेंगे आप?" रमेश ने अशोक के गले मिलते समय कहा।

"जब पार्टी बाहर बुलाये। क्यों प्रेम? ठीक कह रहा हूँ मैं न?"

"हाँ, दादा" प्रेम आगे कुछ नहीं बोल सका!

× × ×

"इतनी बड़ी-बड़ी बातें हो गईं और तुमने मुझे कुछ भी नहीं बताया! तार क्यों नहीं दे दिया?" मि० वर्मा के शब्दों में क्रोध और क्षोभ मिले हुये थे! गड़बड़ी के समय वे पहाड़ पर थे। जल्दी आने की कोशिश की लेकिन ट्रेनों की दिक़्क़त से आने में दो हफ़्ते की देर हो गई। आते ही प्रेम और रमेश की चोट और गिरफ़्तारी, लुई की बीमारी आदि का पता चला, बहुत नाराज़ हो गये। "इतनी बीमार पड़ीं तुम और मुझे ख़बर भी नहीं दी?" मि० वर्मा ने फिर कहा।

"पापा ग़लती हो गई, माफ़ कीजिये। प्रेम ने कई बार तार देने के लिये कहा लेकिन मैंने ही रोक दिया। सोचा आप घबरा जायेंगे

और फ़ौरन चले आवेंगे। इससे आपकी तन्दुरुस्ती पर बुरा असर पड़ता।'' लुई ने धीरे से कहा।

''बहुत ख़ूब, तुम्हारी हालत चाहे जैसी हो मेरी तन्दुरुस्ती ठीक रहे। अजब पगली लड़की है।'' मि० वर्मा का पारा उतर रहा था।

''रमेश, प्रेम की कुछ ख़बर मिली ? कैसे हैं दोनों ?'' मि० वर्मा कुछ रुककर बोले।

''सुना है चिट्ठी वग़ैरह की इजाज़त नहीं है।'' रेखा ने उदास होकर कहा।

''अच्छा !'' मि० वर्मा ठंढी साँस लेकर चुप रह गये !

दुख की घड़ियाँ बड़ी होती हैं। लेकिन आदत पड़ जाने पर मनुष्य अपनी ये घड़ियाँ भी बिता ही लेता है ! समय के साथ-साथ लुई, रेखा, मि० वर्मा आदि के घाव भी भरने लगे। प्रेम नहीं था, रमेश नहीं था, घर सूना था, लेकिन इन लोगों के दिन कटते ही जा रहे थे।

लुई और रेखा पार्टी का काम तत्परता से करती रहीं। पहिले हस्ताक्षरों और नेताओं की रिहाई, दमन बन्द करने आदि का आन्दोलन चला, फिर महँगी और गल्ले की कमी दूर करने के लिये शोर ग़ुल मचाया गया। गाँधी जी के पत्रों ने और भी रास्ता साफ़ कर दिया। स्थानीय पार्टी के साथियों ने गली-गली छान डाली, घर-घर प्रचार किया, महल्ला कमेटियाँ बनाईं और धीरे-धीरे जनता में प्राण फूँकने लगे।

बंगाल की परिस्थिति ने लोगों की आँखें खोल दीं। बहुतों के मुँह बन्द हो गये, बहुतों के मुँह खुले। बंगाल की आवाज़ घर-घर पहुँची। औरतों का स्काड लेकर गलियों में घूमती हुई रेखा और लुई दिन में किसी भी समय देखाई पड़ सकतीं थीं।

× × ×

ताँगा रुका तो सामने ऊँची बिल्डिंग पर लाल झण्डा लहराता हुआ दिखाई दिया। प्रेम ने रमेश की ओर देखा, रमेश ने प्रेम की ओर।

दोनों के दिल धड़क रहे थे।

"दफ़्तर यही है रमेश।"

"चलो चलें ऊपर।"

दोनों साथी खटखट सीढ़ी के ऊपर चढ़ गये। छत पर चालीस-पचास आदमी शांत बैठे हुये थे। एक तरफ़ कुछ महिलायें भी थीं। प्रेम की आँखें ने साफ़ देखा सोना भी उनमें थी। कामरेड शरीफ़ बोलने के लिये खड़े हुये तो सामने प्रेम को देखा। एकदम ख़ुश होकर चिल्ला उठे।

"हल्लो प्रेम, आ गये तुम?" सब की आँखें प्रेम और रमेश की ओर उठ गईं। दोनों ने सभी साथियों को घूँसे की सलामी दी। सब लोग शांत होकर बैठे तो कामरेड शरीफ़ ने कहा—

"साथियो, बड़ी ख़ुशी की बात है कि आज हमारे बीच में कामरेड प्रेम और रमेश वापस आ गये। इन कामरेडों पर हमारी पार्टी को नाज़ है। मैं इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह सकता। कामरेड लुई और रेखा को आप जानते ही हैं--अब कामरेड प्रेम और रमेश को भी देख लीजिये। मैं आग में तपे अपने इन दोनों साथियों का इस्तक़बाल करता हूँ.........।" कामरेड शरीफ़ इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह सके। गला भरा आ रहा था।

लोगों ने इन दोनों साथियों को देखा, फिर सब की आँखें उसी ओर घूम गईं जिधर कामरेड लुई और रेखा बीच में कामरेड सोना के साथ बैठी हुई थीं। तीनों की आँखें नीची हो गईं। उनका मौन उनके हृदय की सारी प्रसन्नता, सारे कौतूहल, सारी विह्वलता का पूर्ण परिचय दे रहा था।

सब के साथ प्रेम और रमेश की आँखें भी उधर गईं। आँखें भरी हुई थीं, धुँधला-सा चित्र ही देखा इन दोनों ने।

आम मेम्बरों की हफ़्तेवारी सभा का नियम था कि सब कार्रवाई ख़त्म होने पर अन्तर्राष्ट्रीय गाया जाय। आज का आख़िरी प्रोग्राम था

रमेश का मेम्बरी का प्रतिज्ञापत्र पढ़ना। अन्तर्राष्ट्रीय गाना समाप्त हुआ तो कामरेड शरीफ़ ने स्नेह से कहा—

"प्रेम, ज़रा लुई से तो मिल लो, और रमेश तुम भी! कामरेड रेखा उधर तुम्हारा इन्तज़ार कर रही हैं" और दोनों के कंधे पर हाथ रखकर कामरेड शरीफ़ उधर चल दिये जिधर लुई, रेखा, सोना, खड़ी थीं।

"कहो, मज़े में हो तुम लोग?" प्रेम ने मुस्कराते हुये पूछा। लुई चुप रही, रेखा, सोना ने हिम्मत बाँध कर कहा, "हाँ"

"मैं भी मज़े में हूँ। अब चौबीस घंटा पार्टी का काम करता हूँ।" पीछे से रम्भू बोला। प्रेम और रमेश घूमकर देखना ही चाहते थे कि सोना फिर बोली, "मैं भी यहीं रहती हूँ। दिन भर पार्टी का काम करने के बाद जब ये साथी थक कर वापस आते हैं तो इन बैठे-ठाले लोगों को रोटी- साग खिलाती हूँ और इनकी देखभाल करती हूँ।"

सभी खिलखिला कर हँस पड़े।